ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, एकता तथा मानव-धर्म-प्रेरक हिन्दी पत्रिका

प्रवर्तक
सद्गुरु श्री रामसूरत साहेब
श्री कबीर मन्दिर, बड़हरा
पोस्ट—मद्दोबाजार
जिला—गोंडा, उ०प्र०

आदि संपादक
सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब

संपादक
धर्मेन्द्र दास

आदि व्यवस्थापक
प्रेम प्रकाश

मुद्रक एवं प्रकाशक
गुरुभूषण दास

पारख प्रकाश इंटरनेट पर
www.kabirparakh.com

वार्षिक शुल्क : 50.00
एक प्रति : 13.00
आजीवन सदस्यता शुल्क
1250.00

विषय-सूची

कविता	लेखक	पृष्ठ
मैं तैं छूटत नाहीं	सद्गुरु कबीर	1
हारना न कबूल है	प्यारे लाल साहू	23
जवानी ढूँढ़ रहा हूँ	राधाकृष्ण कुशवाहा	23
मन मोह मूढ़ मत बन	ब्रह्मचारी रामलाल	33
बेटी	श्रीमती तुलसी साहू	37
किसका अहं करूं	साध्वी संतुष्टि	48

स्तंभ

पारख प्रकाश / 2 व्यवहार वीथी / 15 परमार्थ पथ / 24
बीजक चिंतन / 31

लेख

साधना-पथ में सावधानी	भूपेन्द्र दास	7
क्या वेद नसली वर्गीकरण का गवाह है?	श्री धर्मदास	10
क्रोध पर कैसे काबू पायें?	श्री ललितप्रभ जी महाराज	18
नारी : समाज की नायिका	साध्वी सुमेधा	26
सुख और दुख का कारण हम स्वयं हैं	विवेक दास	28
आध्यात्मिक उन्नति कैसे हो?		38
वही चीज़ें ज़रूरी हैं	एपिकुरुस	48

कहानी

गरीब की दौलत	श्री रत्न कुमार सांभरिया	34

संत वाणी

टीकाकार—सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब जी

सद्गुरु कबीर के बाद संत परंपरा की निर्गुणी-धारा में अनेक मूर्धन्य संत हुए हैं जिन्होंने बहुत बड़े जनसमाज को प्रभावित किया और जिनकी वाणियों से प्रेरणा प्राप्त कर असंख्य लोगों ने अपने जीवन को सार्थक बनाया। प्रस्तुत ग्रंथ श्री रविदास साहेब, बावरी साहिबा, यारी साहेब, बुल्ला साहेब, गुलाल साहेब, भीखा साहेब, गोविन्द साहेब, जगजीवन साहेब, घीसा साहेब, मलूक साहेब, दूलन साहेब, धरनी साहेब, चरण साहेब की चुनित वाणियों का संकलन है। यह ग्रंथ जिज्ञासु-मुमुक्षुओं के साथ-साथ आम जनता के लिए भी अत्यंत कल्याणकारी है। पृष्ठ 320, मूल्य 100 रुपये।

सद्गुरवे नमः

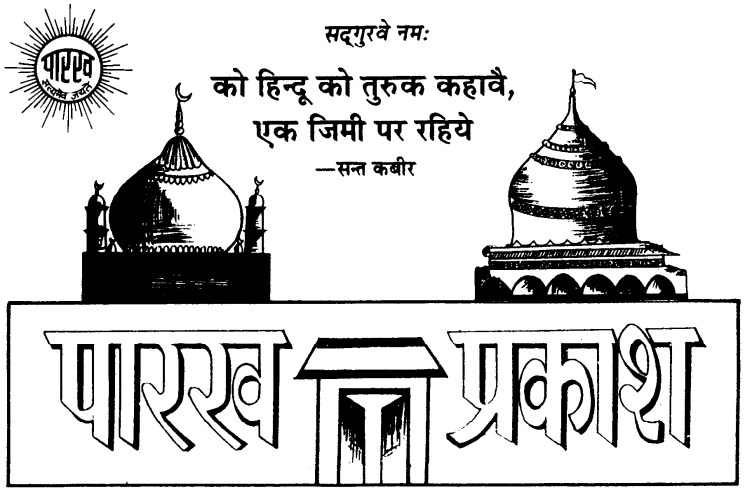

को हिन्दू को तुरुक कहावै,
एक जिमी पर रहिये
—सन्त कबीर

पारख प्रकाश

दुर्मति केर दोहागिन मेटै, ढोटहि चाँप चपेरे।
कहहिं कबीर सोई जन मेरा, जो घर की रारि निबेरे॥ बीजक, शब्द 3॥

वर्ष 48] प्रयागराज, चैत्र, वि. सं. 2076, अप्रैल 2019, सत्कबीराब्द 620 [अंक 4

मैं तैं छूटत नाहीं

संतो समझे का मत न्यारा, जो आतम तत्त्व विचारा॥टेक॥

औरन सो कहे आपा खोजो, आप अपन न जाने।
मुख कछु और हिरदय कछु आना, कैसे राम पिछाने॥ 1॥

औरन सो कहे मोह न कीजे, निर्मोही होय रहिये।
माया मोह सकल आपहि में, या दुख कासो कहिये॥ 2॥

औरन को कहे तजो बड़ाई, आप बड़ाई चाहे।
मान बड़ाई छूटत नाहीं, झीना पीर कहावे॥ 3॥

औरन सो कहे पक्ष न कीजे, आपन पक्ष न छूटे।
कहन सुनन को साधु कहावै, साँच कहे रिस टूटे॥ 4॥

जौं लग राग द्वेष मन माही, स्तुति निंदा आवै।
तब लग तीनों ताप न छूटे, कहा भये बहु गावै॥ 5॥

पद साखी औरन समझावै, आपा समुझत नाहीं।
कहैं कबीर राम क्यों दरसै, मैं तैं छूटत नाहीं॥ 6॥

पारख प्रकाश

वास्तविक धन क्या है?

दुनिया में प्रायः हर आदमी के मन में धन (रुपये-पैसे, जमीन-मकान, स्वर्णाभूषण आदि) की लालसा होती है और हर आदमी धनी होना चाहता है। धनी होना गलत नहीं है, गलत है गलत तरीके से धनार्जन करना, धन की अत्यधिक लालसा होना, धन का अहंकार और प्रदर्शन करना। धन की अत्यधिक लालसा आदमी से पाप करवाती है और धन का अहंकार निर्धनों का तिरस्कार करवाता है तथा धन का प्रदर्शन सामान्य लोगों के मन में लोभ-लालच और ईर्ष्या-द्वेष पैदा करता है। धन का लोभी और अहंकारी आदमी कभी सुख की नींद सो नहीं पाता, क्योंकि उसके सिर पर हर समय चिंता और भय का भूत सवार रहता है। यहां तक उसकी स्वाभाविक भूख भी समाप्त हो जाती है और उसे या तो भूख जगाने के लिए दवाई खाना पड़ता है या खाये हुए भोजन को पचाने के लिए दवाई खाना पड़ता है। जो धन आदमी की भूख और नींद दोनों को छीन ले, उसे सुख-शांति पूर्वक जीने न दे, हर समय चिंतित, भयभीत और तनावग्रस्त बनाकर रखे उसे सच्चा धन कैसे कहा जाये! सच्चा धन तो वह है जिसे पाने के बाद आदमी का मन निश्चिंत और निर्भय हो जाये तथा प्रसन्नता से भर जाये।

धनी होना और धन प्राप्त करना अच्छी बात है, परंतु सच्चा धन क्या है, इसे समझना होगा। प्रायः हर आदमी के मन में यह बात बैठी हुई है कि रुपये-पैसे, जमीन-मकान, सोना-चांदी आदि ही सच्चा धन है, इसीलिए हर आदमी इसे पाने के लिए रात-दिन दौड़ रहा है, जायज-नाजायज सब कुछ कर रहा है। किन्तु प्रश्न यह है कि यदि रुपये-पैसे, जमीन-मकान आदि ही सच्चा धन है तो इसे पाने के बाद किसका मन तृप्त, संतुष्ट हुआ है, कौन सुख-शांति-प्रसन्नता पूर्वक जीवन जी रहा है और सुख की नींद सो रहा है, किसके मन की जलन शांत हुई है? रुपये-पैसे, जमीन-मकान आदि धन है इससे इंकार नहीं किया जा सकता। इसकी आवश्यकता सबको है और रहेगी, परंतु इसके अलावा आदमी को और बहुत कुछ की आवश्यकता है, जिन्हें वह रुपये-पैसे से कभी नहीं खरीद सकता, किन्तु जिनके बिना वह न तो वर्तमान जीवन को सुख से जी सकता है और न जीवन लक्ष्य आत्मशांति-आत्मतृप्ति प्राप्त कर सकता है।

धन के अनेक प्रकार हैं, परन्तु सच्चा धन क्या है? किसी ने बहुत बढ़िया कहा है—संग चले सो धन है संतो, छूट जाये सो माया। जो हमारे संग-साथ चले, कभी न छूटे, वही सच्चा धन है और जो बीच में मिले तथा बीच में ही छूट जाये वह माया है। यद्यपि इसी माया से जीवन का निर्वाह होता है, व्यवहार होता है और लेन-देन होता है परंतु यह आदमी के साथ कभी जाती नहीं है। यहां तक एक जगह स्थिर होकर रहती नहीं है, सदैव अपना ठिकाना बदलती रहती है, इसीलिए इसे चंचला कहा जाता है।

धन के जो अनेक प्रकार हैं उनमें से एक धन ऐसा है जिसके बिना दुनिया का कोई भी आदमी, यहां तक कोई भी प्राणी, जीवित नहीं रह सकता और एक धन ऐसा है जिसे आदमी चाहकर भी कभी छोड़ नहीं सकता, किन्तु जिसे पा जाने के बाद उसकी सारी भूख-प्यास, दौड़-धूप समाप्त हो जाती है। इन दोनों के बीच एक धन ऐसा है जिसे पाकर आदमी का पारिवारिक-व्यावहारिक जीवन सुखद हो जाता है और एक दूसरा धन है जिसे पाकर उसका मन हर समय छका रहता है, हार्दिक-मानसिक संतोष मिलता है।

आदमी को जीवन में अनेक धन की आवश्यकता होती है। उनमें से कुछ प्रमुख धन इस प्रकार हैं—

1. अन्न-धन—अन्न धन ऐसा धन है जिसके बिना कोई भी आदमी जीवित नहीं रह सकता। अन्न अर्थात भोजन मनुष्य ही नहीं प्राणि मात्र की प्राथमिक आवश्यकता है। आदमी कपड़ा और मकान के बिना तो

जीवित रह सकता है, किन्तु अन्न के बिना जीवित नहीं रह सकता। अन्न अर्थात भोजन में रोटी, भात, दाल, सब्जी, फल, दूध, मेवा, मिष्ठान्न सबका समाहार हो जाता है। अरबपति आदमी भी यदि एक सप्ताह से भूख से तड़प रहा हो तो वह करोड़ों रुपये देकर एक सूखी रोटी लेना चाहेगा, क्योंकि वह उसके बिना जीवित नहीं रह सकता। इसीलिए उपनिषद् में अन्न को ब्रह्म कहा गया है—अन्नं ब्रह्म।

अन्न आकाश से नहीं टपकता है उसे धरती से पैदा करना होता है और उसके लिए कठिन परिश्रम करना पड़ता है। अतः हर आदमी को मेहनती होना चाहिए। जितनी वह मेहनत करेगा उतना ही वह भौतिक विकास करेगा और उतना ही शारीरिक रूप से स्वस्थ रहेगा।

जिस अन्न को ब्रह्म कहा गया है, जिसके बिना आदमी जीवित नहीं रह सकता यदि उसका दुरुपयोग किया जाता है अर्थात ज्यादा खाया जाता है, ज्यादा छौंक-बघारकर, तेल-घी, मिर्च-मसाला डालकर, सड़ाकर खाया जाता है तो वही अन्न प्राणघातक हो जाता है। दुरुपयोग तो हर चीज का गलत है, फिर अन्न का दुरुपयोग अपराध है। आदमी का कर्तव्य है कि अपना तो खाये ही दूसरों को भी खिलाने का प्रयास करे। ऋग्वेद में कहा गया है—जो अन्न का दुरुपयोग करता है, न सज्जनों को खिलाता है और न मित्रों को, किन्तु केवल अपना ही पेट भरता है, वह पापी है और पाप खाता है। पूरा मंत्र इस प्रकार है—

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी॥

(ऋग्वेद 10-117-6)

अर्थ—सेवा-प्रवृत्ति से रहित असावधान मनुष्य का धन प्राप्त करना व्यर्थ है। मैं सत्य कहता हूं कि वह स्वयं अपना वध कर रहा है। अर्थात सेवा और सदुपयोग रहित धन इकट्ठा करना आत्महत्या करना है। जो न पवित्रात्माओं की सेवा करता है और न मित्रों को खिलाता है, केवल अपना पेट भरता है वह पापी है, वह पाप भक्षण करता है।

खास बात यह है कि अन्न एक ऐसा धन है जिसकी आवश्यकता हर आदमी को जन्म से लेकर मृत्यु तक हर दिन पड़ती है, इसके बिना कोई जीवित नहीं रह सकता। अतः इसका दुरुपयोग कभी न करे। खाना आदमी की मजबूरी है, परन्तु वह खाना खाना नहीं है जो दूसरे का हक छीनकर या जान लेकर खाया जाता है। दूसरे का हक छीनकर आदमी पेट और पेटी तो भर लेगा किन्तु उसका मन सदैव पीड़ित रहेगा, उसके मन की भूख कभी नहीं मिटेगी। अंत में हाय-हाय करते हुए उसे दुनिया से जाना होगा।

2. आवास धन—अन्न से आदमी का पेट तो भर जायेगा किन्तु ठंडी, गरमी, वर्षा से उसकी रक्षा नहीं होगी। उसके लिए छाया की जरूरत होगी। खेत, खलिहान, दफ्तर, कारखाना आदि जगहों पर सुबह से शाम तक काम करते थके-मांदे आदमी को एक विश्राम स्थल की आवश्यकता होगी, जहां रात भर वह सुकून से विश्राम कर सके। इसलिए अन्न-भोजन के पश्चात आदमी की दूसरी आवश्यकता है—आवास-मकान। इसमें हम कपड़े को भी जोड़ लेते हैं। आवास की आवश्यकता धनी-गरीब, राजा-रंक, स्त्री-पुरुष, साधु-गृहस्थ सबको है। इसके अभाव में मनुष्य निश्चिंत जीवन नहीं जी सकता। आवास की आवश्यकता इसलिए भी है कि वहां आदमी अपने जीवन-निर्वाहिक वस्तुओं को सुरक्षित रख सके। अतः अन्न के बाद महत्त्वपूर्ण धन है आवास।

आवास अर्थात मकान छोटा-बड़ा, कच्चा-पक्का होने से सुविधा-असुविधा में तो अंतर होगा, किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि जिसका मकान जितना बड़ा और सुविधादायक होगा उसे ज्यादा बढ़िया नींद आयेगी और जिसका मकान छोटा होगा उसे कम नींद आयेगी। स्थिति इसके विपरीत हो सकती है। नींद की अधिकतम गोलियों का प्रयोग बड़े आलीशान मकान वाले ही करते हैं। नींद का संबंध मकान के छोटे-बड़े होने से नहीं है, किन्तु नींद का संबंध चित्त-मन की निर्मल-मलिन स्थिति से है।

3. परिवार धन—आदमी को पेट भर खाने को मिल जाये, पहनने को कपड़े और रहने को जगह मिल जाये, इतने से वह जीवन तो जी लेगा किन्तु सुखी जीवन नहीं जी सकता। मनुष्य सामाजिक प्राणी है वह एकाकी जीवन नहीं जी सकता। उसे किसी के संग-साथ की आवश्यकता होती है, जो सुख-दुख में उसके साथ तो रहे ही, जिसके सामने वह अपने मन की भावनाओं को, विचारों को प्रकट कर सके। ऐसे साथी हैं परिवार के सदस्य—पति, पत्नी, माता, पिता, भाई-बहन, पुत्र-पुत्री, सास-बहू आदि।

यदि किसी मनुष्य के पास चुनने के लिए दो विकल्प हों—एक तो यह कि सारी सुविधाओं से युक्त स्वर्णजटित मकान जिसमें अकूत संपदा भरी हो उसमें रहना किन्तु उसमें रहकर वह किसी से मिल-जुल नहीं सकता, किसी को देख नहीं सकता, किसी की बात सुन नहीं सकता और किसी से बात कर नहीं सकता और दूसरा विकल्प यह कि बहुत साधारण-सा मकान हो उसमें रहना, किन्तु जिस किसी से भी मिलने-जुलने, बात करने आदि की पूरी स्वतंत्रता होना तो वह दूसरे विकल्प को ही चुनेगा। सारी सुविधा एवं अकूत संपदा युक्त मकान में नितांत अकेला रहने से आदमी कुछ दिनों में पागल हो जायेगा। अतः अन्न और मकान के पश्चात आदमी का खास धन है परिवार के सदस्य, सगे-संबंधी, मित्र-परिजन। अपने कहे जाने वाले लोगों के बीच, संग-साथ रहकर आदमी थोड़ी चीजों में आराम से जीवन-गुजर कर लेगा, किन्तु नितांत अकेला रहकर सारी सुविधाओं से संपन्न होने के बाद भी उसका मन तनावग्रस्त, विषादपूर्ण रहेगा। अतः मनुष्य के पास आर्थिक संपन्नता हो या न हो पारिवारिक संपन्नता अवश्य होना चाहिए।

4. प्रेम धन—मात्र किसी के साथ रहने से ही आदमी सुखी जीवन नहीं जी सकता। महत्त्वपूर्ण यह नहीं है कि आदमी किसके साथ रह रहा है किन्तु महत्त्वपूर्ण यह है कि कैसे रह रहा है—प्रेमपूर्वक या द्वेष पूर्वक और तनावपूर्वक। यदि परस्पर का व्यवहार प्रेमपूर्ण और मधुर है तथा एक दूसरे के प्रति विश्वास एवं समर्पण भाव है तो थोड़ी चीजों एवं छोटे मकान में रहकर भी आदमी का व्यावहारिक जीवन सुखद होगा, किन्तु यदि परस्पर का व्यवहार द्वेष एवं तनावपूर्ण है, किसी का किसी पर विश्वास एवं समर्पण नहीं है तो अतुल वैभव एवं भव्य भवन में रहकर आदमी का व्यावहारिक जीवन दुखद एवं कलहपूर्ण होगा।

प्रेम-विश्वास ऐसा सूत्र है जो लोगों को एक साथ जोड़कर रखता है। प्रेम-विश्वास के बिना जीवन नीरस एवं शुष्क हो जाता है। सब कुछ सूना-सूना एवं खाली-खाली लगता है। प्रेम में लेने की नहीं अपितु देने की भावना होती है। प्रेम के केन्द्र में 'पर-प्रिय' होता है 'स्व-प्रेमी' नहीं। प्रेम देने से मिलता है मांगने से नहीं और इसके लिए अपने मिथ्या स्वार्थ तथा अहंकार का विसर्जन करना होता है। स्वार्थी एवं अहंकारी कभी प्रेम का अनुभव नहीं कर सकता।

आप किसको क्या दे रहे हैं यह महत्त्वपूर्ण तो है ही, परंतु कैसे दे रहे हैं यह और ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। प्रेम से दी हुई सूखी रोटी-सूखे भात में अमृत का स्वाद आयेगा किन्तु तिरस्कार-दुत्कार पूर्वक दी गई मिठाई भी जहर तुल्य जान पड़ेगी। आप किसी को कुछ दे सकें या न दे सकें अपने हृदय का प्रेम तो दे ही सकते हैं और जितना देते-बांटते जायेंगे उतना ही यह बढ़ता जायेगा। ध्यान रखें, प्यार के दो मीठे बोल आपसी रिश्तों को पोलियो से बचाता है। भौतिक धन की अपेक्षा प्रेम-धन आदमी को अधिक सुखी बनाता है। अतः भौतिक धन के मालिक बन सकें या न बन सकें प्रेम-धन के मालिक अवश्य बनें। प्रेम जीवन को सरस और मधुर बनाता है। प्रेमरहित जीवन उस फूल के समान है जो बाहर से दिखने में तो बहुत सुंदर और खूबसूरत है परन्तु जिसमें सुगंध नाममात्र को भी नहीं है।

5. स्वभाव धन—स्वभाव का अर्थ है अपना भाव। हर आदमी का अपना अलग स्वभाव होता है और जिसका जैसा स्वभाव होता है वह समाज में अपना वैसा ही प्रभाव-असर छोड़ जाता है। जिसका स्वभाव

सरल, कोमल, विनम्र, मधुर एवं सेवापरायण है वह कहीं भी चला जाये उसे मित्रों, सहयोगियों की कमी नहीं होगी, किन्तु जिसका स्वभाव इसके विपरीत है वह कहीं चला जाये उसे विरोधियों की कमी नहीं होगी।

लोभी, क्रोधी, ईर्ष्यालु, कंजूस, संदेही, अहंकारी स्वभाव का आदमी चाहे कहीं चला जाये, कुछ भी पा जाये और कुछ भी बन जाये वह सुख-शांति पूर्वक जीवन जी नहीं सकता। दुनिया का कोई भी वैभव उसे सुखी नहीं बना सकता। क्योंकि आदमी वस्तुओं के अभाव के कारण दुखी नहीं है किन्तु दुखी है स्वभाव के कारण। वस्तुओं के अभाव से जो दुख होता है वह तो वस्तुओं के मिल जाने पर मिट जाता है, किन्तु स्वभाव के कारण जो दुख होता है वह कभी मिट नहीं सकता। वह तो तभी मिटेगा जब आदमी स्वयं अपने स्वभाव को बदल लेगा।

आदमी मनचाहा धन, पद, प्रतिष्ठा प्राप्त कर पायेगा या नहीं, इसमें संदेह है और कदाचित प्राप्त कर भी लेता है तो पूर्ण सुखी-शांत जीवन जी सकेगा यह तो नहीं ही कहा जा सकता है, किन्तु यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि आदमी जैसा चाहे वैसा अपना स्वभाव अवश्य बना सकता है और उदार, संतोषी, सरल, कोमल, विनम्र, सहिष्णु, मधुर, शांत स्वभाव बनाकर वह पूर्ण सुखी जीवन जी सकता है और उसके इस सुंदर स्वभाव से उसके संपर्क में आने वाले लोगों को भी प्रसन्नता का अनुभव होगा। अतः हर आदमी को प्रयत्नपूर्वक अपने स्वभाव को सुंदर बनाने की आवश्यकता है। अपने सुंदर स्वभाव को लेकर वह जहां भी जायेगा सुगंध ही बिखेरता जायेगा।

ध्यान रखें, बड़ा आदमी बनना अच्छी बात है, किन्तु अच्छा आदमी बनना बहुत बड़ी बात है। आदमी बड़ा बनता है धन, विद्या, पद, प्रभूता से किन्तु अच्छा बनता है अच्छे स्वभाव, गुण एवं आचरण से। दुनिया बड़े आदमी की पूजा नहीं करती किन्तु अच्छे आदमी की पूजा करती है। बड़ा आदमी बन सकें या न सकें अच्छा स्वभाव बनाकर अच्छा आदमी अवश्य बनें।

6. सद्‌गुण धन—नीति वचन है—कृतेन हि भवेदार्यो न धनेन न विद्यया। अर्थात मनुष्य आचरण से बड़ा-श्रेष्ठ होता है न कि धन और विद्या से। आचरण से तात्पर्य है शुभाचरण। ऐसा आचरण, ऐसा व्यवहार जिससे मनुष्य स्वयं तो सुखी, शांत, संतुष्ट हो ही, उससे दूसरों को भी सुख-सुविधा मिले। और यह संभव है सद्‌गुणों के आचरण से।

दुनिया में हर आदमी दुखी है और इसका मूल कारण है अज्ञान, अविवेक। दुखों की पूर्णतः निवृत्ति बाह्य वैभव, पद, प्रतिष्ठा आदि से संभव नहीं है। यह संभव है ज्ञानपूर्वक सद्‌गुणों के आचरण से। शुभ गुण ही जीव के कल्याण-मार्ग के सच्चे साथी हैं। अन्य संगी-साथी बीच में ही साथ छोड़ देते हैं। जीव को उसकी अंतिम मंजिल तक पहुंचने में वे सहयोगी नहीं होते। उसमें सहयोगी होते हैं शुभगुण-सद्‌गुण। शुभगुण जीव के ऐसे साथी हैं जो जीव को उसके अंतिम मंजिल आत्म-घर, स्वरूपस्थिति तक पहुंचाने वाले हैं। जहां पहुंच जाने पर किसी प्रकार का कोई दुख रह ही नहीं जाता, सारे दुखों से सदा के लिए छुटकारा मिल जाता है। इसलिए हर आदमी का यह परम कर्तव्य है कि वह सद्‌गुण-धन के मालिक अवश्य बने।

बाहर के माने गये सारे वैभव से संपन्न हो जाने पर भी न किसी के मन की जलन मिटी है और न मिट सकती है, किन्तु एक सच्चे सद्‌गुणी व्यक्ति के मन में किसी प्रकार की जलन रह ही नहीं जाती। वह पूर्ण शांति का सागर हो जाता है। जो पूर्ण सुखी और शांत-जीवन जीना चाहता है उसके मन में हर समय यह भाव उठते रहना चाहिए कि मैं अन्य और बातों में भले ही दूसरों से पीछे रह जाऊं किन्तु सद्‌गुणों को ग्रहण करने और उनके आचरण करने में मुझे किसी से पीछे नहीं रहना है।

आज ही नहीं सब समय देश-दुनिया-समाज को जितनी आवश्यकता अच्छे किसान, व्यापारी, अधिकारी, नेता, डॉक्टर, इंजीनियर, वकील, जज, अध्यापक आदि की रही है और है उससे कई गुणा अधिक आवश्यकता

एक सद्गुणी-सदाचारी व्यक्ति की रही है, है और रहेगी। सद्गुण-धन जीवन का असली धन है। जीवन में जितने अधिक सद्गुण आते जायेंगे बाहर-भीतर की समस्याएं उतनी सुलझती जायेंगी।

7. **आत्म धन**—आत्म धन ऐसा धन है जिसे जाने बिना दुनिया का हर आदमी दरिद्र बना भटक रहा है। जिसके लिए आदमी सब कुछ करता है और सब कुछ पाना चाहता है, यहां तक ईश्वर-ब्रह्म-परमात्मा भी, उस अपने आप आत्म-धन का ही उसे पता नहीं है। आत्मा का अर्थ है स्वयं, अपना आपा, अपना अस्तित्व। सब कुछ छुट जाता है किन्तु अपना आपा, अस्तित्व तो कभी नहीं छुट सकता है। अपना आपा, हम स्वयं ही तो अपने लिए, अपने सुख-शांति के लिए सबको पकड़ते और छोड़ते रहते हैं, परन्तु क्या हमें अपने आप का ठीक से बोध है। यदि अपने आप का ठीक से बोध होता तो अपने सुख का केन्द्र बाहर मानकर रोना-गिड़गिड़ाना बंद हो गया होता।

आदमी जो कुछ करता है अपने लिए करता है। हर आदमी को सबसे अधिक प्रिय उसका अपना आपा ही है। इससे अधिक प्रिय कुछ और कोई नहीं है। क्योंकि आदमी सब कुछ को अपने लिए ही चाहता है। इसी बात को याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी को समझाते हुए बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा है—पति के लिए पति प्रिय नहीं होता, पत्नी के लिए पत्नी प्रिय नहीं होती, पुत्र के लिए पुत्र, पिता के लिए पिता, गुरु के लिए गुरु, देव के लिए देव प्रिय नहीं होते किन्तु सब अपने लिए, आत्मा के लिए प्रिय होते हैं। अतः—आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्वा विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम्। अर्थात आत्मा ही देखने, सुनने, मनन करने एवं निदिध्यासन करने योग्य है। आत्मा के दर्शन, श्रवण, मनन और विज्ञान से ही मानो सब कुछ जाना हुआ हो जाता है।

आदमी सब कुछ को जानना चाहता है, परंतु अपने आप को नहीं जान पाता, इसलिए उसका सब जानना न जानने के समान हो जाता है। किसी ने बहुत बढ़िया कहा है—"आतम प्यारे को तूने न जाना रे। रहा दुनिया में हरदम दिवाना रे।" जिसने सबको जाना परंतु अपने को न जाना वह दिवाना नहीं तो और क्या है! यद्यपि बाहरी ज्ञान की भी आवश्यकता है। बाह्य भौतिक ज्ञान से ही भौतिक विकास होता है और उससे जीवन-निर्वाह में सुविधा होती है तथा दूसरों की सेवा होती है। परंतु आदमी चाहे जितना भौतिक विकास कर ले उससे न तो उसके मन की जलन मिटेगी और न उसे आत्मिक शांति की प्राप्ति होगी। यह तो आध्यात्मिक विकास से ही संभव है और इसके लिए आत्मज्ञान की आवश्यकता है।

आत्म-धन का अर्थ है अपना धन, जो हमसे कभी न छूटे और वह है अपना आपा, स्वस्वरूप चेतन। दुनिया के सभी सच्चे संत इसी आत्मधन के धनी रहे हैं और इस धन को पाकर उन्होंने बड़े-बड़े राजसी वैभव, साम्राज्य को तिनके के समान ठुकरा दिया—संतन को कहा सीकरी सो काम। सद्गुरु कबीर कहते हैं—मन लागो मेरो यार फकीरी में। जो सुख पायों राम भजन में, सो सुख नाहीं अमीरी में।

बाहर अधिक से अधिक धन बटोरकर जो जितना बड़ा धनी होना चाहेगा उसे उतना ही गलत काम करना पड़ेगा, परंतु आत्मधन सारे गलत कामों को छोड़कर ही प्राप्त होता है। आत्म-धन का धनी पूर्ण निर्भय, निश्चिंत और परम तृप्त-सुखी हो जाता है। उसकी हर प्रकार की दीनता और दरिद्रता समाप्त हो जाती है।

जैसे हर आदमी को जीने के लिए एवं विश्राम के लिए आवास की, व्यावहारिक सुख-समता-संगठन के लिए प्रेम और अच्छे स्वभाव, सदाचरण की आवश्यकता है वैसे पूर्ण विश्रांति के लिए, परमानंद का हर समय अनुभव करते रहने के लिए, आत्म-धन की आवश्यकता है। इस धन को पाकर सारी इच्छाएं, कामनाएं, तृष्णा सदा के लिए शांत हो जाती हैं और मनुष्य परम शांति के सागर में निरंतर निमज्जन करता रहता है।

—धर्मेन्द्र दास

साधना-पथ में सावधानी

लेखक—भूपेन्द्र दास

1. खेतों में हम फसल के बीज बोते हैं किन्तु बोये गये बीज के साथ-साथ विजाति घास भी अपने आप उग आती है। हम कमरे के खिड़की और दरवाजों को खोलते हैं ताकि शुद्ध वायु व प्रकाश कमरे में प्रवेश करे। पर वायु के साथ-साथ धूल भी आ जाती है। इन्हें लाने के लिए कोई प्रयास नहीं करना पड़ता बल्कि आ जाने पर कमरों की सफाई करके धूल बाहर फेंकना पड़ता है और खेत से घास को बाहर निकालना पड़ता है तब फसल अच्छी होती है। ठीक ऐसे ही जीवन में मन-इन्द्रियों का व्यवहार करते-करते विकार आ ही जाते हैं। अतः इन विकारों को समझपूर्वक बाहर निकालने की आवश्यकता है। अगर समय रहते विकारों का त्याग नहीं किया गया तो ये ही हमारे पतन का कारण बन जायेंगे।

2. कपड़ा पहनना हमारे अधिकार की बात है चाहे हम मंहगा कपड़ा पहनें अथवा सस्ता। कितने धनी साधारण कपड़ा पहनते हैं और कितने जो अपेक्षाकृत बहुत धनी नहीं हैं शौकीन होने के नाते मंहगे कपड़े पहनते हैं। यह तो अपनी-अपनी इच्छा की बात है। लेकिन शरीर रूपी कपड़ा पहनने के लिए हम स्वतंत्र नहीं हैं। शरीर रूपी वस्त्र धारण करना हमारे कर्मों के अधीन है। हम अच्छा-बुरा कर्म करने में स्वतंत्र हैं पर उनके परिणाम को भोगने में नहीं। हम जैसा कर्म करेंगे वैसे ही फल मिलेंगे और उसी के अनुसार शरीर मिलेगा या मोक्ष।

3. जब आप किसी गाड़ी से यात्रा कर रहे होते हैं तब आपकी गाड़ी का कोई पहिया खराब हो जाता है तो आप डिक्की में रखे जैक का प्रयोग करके एक-एक चूड़ी घुमाकर पहिया को जमीन से ऊपर उठाकर गाड़ी से अलग निकाल लेते हैं। ऐसे ही जीवन भी एक यात्रा है। हम अपने शुभ कर्मों की अथवा सद्गुणों की प्रत्येक चूड़ी को उठाकर पूरा जीवन ऊपर उठा सकते हैं।

4. हमारे मन में ऐसी भावना बनी हुई है कि हर समय हम नई-नई चीजों की मांग करते हैं। जैसे एक ही सब्जी अगर दो दिन खाने को मिल जाये तो लगता है अरे! रोज-रोज यही सब्जी। हम ऊबने लगते हैं। और दूसरी सब्जी की मांग करते हैं। जिन कपड़ों को हम पहनते हैं कुछ दिनों बाद नया चाहते हैं। पुराने मकान के लिए हमारी सोच होती है काश! हम नया मकान बना पाते। नवीनता प्रत्येक जगह हम चाहते हैं। काश! ऐसा ही हम नया मन, सुन्दर मन बनाने के लिए सोच पाते। क्रोध करते-करते बहुत दिन बीत गये अब अक्रोध का जीवन जीने के लिए सोचते। वासना में पड़े-पड़े बहुत दिन हो गये अब निर्वासना का जीवन जी पाते। ऐसे और विषयों की बात है। हमारे मन में जिस दिन ऐसी सोच पैदा हो जायेगी हमारा सुधार होना प्रारंभ हो जायेगा। मन की सौभाग्यवस्था में ही जीवन का सच्चा सुख और शांति समाये हुए हैं।

5. गाड़ी के जैक को जब हम नीचे से लगाकर एक-एक चूड़ी कसते हैं तो गाड़ी का कुछ हिस्सा अथवा पहिया ऊपर उठता है। और जब चूड़ी नीचे गिराते हैं तो पहिया नीचे जमीन की ओर झुकता है। ऐसे ही अपने जीवन रूपी गाड़ी में जब हम चूड़ी की भांति एक-एक सद्गुणों को जीवन में अपनाते हैं तो जीवन रूपी गाड़ी का स्तर ऊपर उठता चला जाता है। और जब सद्गुण रूपी चूड़ी को गिराते हैं तो जीवन स्तर निम्न होता चला जाता है। मर्जी आप की! आप अपने जीवन रूपी गाड़ी के स्तर को ऊपर की ओर ले जाना चाहते हैं या नीचे की ओर।

6. सिलाई मशीन की सुई में धागा न होने पर भी वह चलती जरूर है लेकिन कुछ सिलती नहीं। उसी प्रकार जिन्दगी में अगर प्रेम-प्यार नहीं डालोगे तो जिन्दगी चलेगी जरूर पर रिश्तों को जोड़ नहीं पायेगी। इसलिए जिन्दगी की इस मशीन में रिश्तों को जोड़ने के लिए प्रेम, करुणा एवं विश्वास का धागा डाले रहिये।

7. जिन्दगी तो हमें सब समय सा, रे, ग, म सिखा रही है। पर हमें सही ढंग से पढ़ना नहीं आया। और हम "सारे गम" लेकर रोते हुए बैठ गये। जीवन में सा, रे, ग, म का शांतिमय मधुर संगीत लाना है तो जीवन से "सारे गम" को दूर करना ही होगा।

8. संतजन कहते हैं—दिमाग में "वजन" नहीं "भजन" रखना। "जागने वाला कमाता है और सोने वाला खोता है।" हम संतों की बातों को नजरअंदाज करते हुए नाना चिंता, विकलता, ऐषणा, वासना आदि के भार से मन को बोझिल करते चले जाते हैं। जागने का अर्थ ही होता है अपने मन और पेट को हलका रखना, मन को सत्संग और आत्माभिमुखता के रंग में रंगाये रखना।

9. जीवन में बस की यात्रा का अनुभव सबको होगा। बस में हम जितना पीछे बैठते हैं अर्थात ड्राइवर से जितने दूर होते हैं थकान उतने अधिक महसूस होता है अपेक्षाकृत ड्राइवर के निकट बैठे लोगों से। हम पीछे से उठकर थोड़ा-सा आगे आ जाते हैं तो थकान पीछे की अपेक्षा थोड़ी कम हो जाती है। हम ड्राइवर से जितने दूर होते हैं हमें थकान उतनी ही अधिक लगती है और ड्राइवर के जितने करीब होते हैं उतना ही थकान कम महसूस होता है। इसका मतलब संत, सिद्धान्त और सद्गुरु हमारे जीवन-मार्ग के पथ-प्रदर्शक हैं, हमारे जीवन रूपी गाड़ी को उन्नति की ओर खींचने वाले होते हैं। हम इनसे जितने दूर होते हैं, कल्याण-शिखर से उतने ही दूर चले जाते हैं। यही कारण है कि हम दुख, पीड़ा, अशांति से बारंबार पीड़ित होते रहते हैं। और हमारा जीवन नरक बना रहता है। दूसरी तरफ हम इनसे जितने निकट होते हैं उतने ही साधना, संयम, सत्संग और कल्याण के निकट होते हैं।

10. भीतर का दिखाई नहीं देता, बाहर का दिखाई देता है इसलिए मनुष्य रक्त को उतना मूल्य नहीं देता जितना चमड़ी को देता है। जीवन को उतना महत्त्व नहीं देता जितना जीविका को देता है। अमन को उतना महत्त्व नहीं देता जितना मन को देता है। नौका नदी में ही रहेगी तट पर नहीं, पर तट तक पहुंचने के लिए यह जरूरी है। इसी प्रकार मन जरूरी है अमन तक पहुंचने के लिए। वही नौका तट तक ले जाती है जो छिद्ररहित हो वही मन अमन तक ले जा सकता है जिसमें छेद न हो। मन का छेद रहित होने से तात्पर्य है निःस्वार्थ भाव, अहंकार-कामना रहित हो जाना। निष्कामता, निर्मानता, आत्मतृप्ति ही जीवन का सच्चा आनंद है।

11. जैसे पत्तल सिर्फ भोजन करने के लिए होता है। भोजन करने के पश्चात उसे समेट कर फेंक देते हैं रखते नहीं। वैसे ही शरीर सिर्फ साधना करने के लिए है अहंकार के लिए नहीं। मन को साध लेने के पश्चात इसका कोई औचित्य नहीं होता, चाहे यह रहे अथवा गले। शरीर के रहते-रहते ही शरीराभिमान गल जाना चाहिए।

12. श्री मोतीलाल नेहरू ने इलाहाबाद में जब एक नया मकान खरीदा और उसमें रहने लगे तब उसका नाम उन्होंने "आनंद भवन" रखा । उस आनंद भवन को आप जाकर देखेंगे तो क्या देखने मात्र से आपको आनंद आयेगा? आपका आनंद भवन है आपका निवास, आपकी झोपड़ी, आपकी बिल्डिंग और इससे भी सच्चा आनंद भवन है आपकी "आत्मा"। आपका निवास यदि नित्य अंतरात्मा की तरफ हो रहा है तो इससे बढ़कर आनंद भवन और कहीं नहीं हो सकता। बाहर से जो भी खुशी मिलेगी और आनंद मिलेगा वह असली नहीं हो सकता। वह कभी न कभी छुट जायेगा। भीतर का जो आनंद है वही असली परमानंद है जो कभी छूटने वाला नहीं है।

13. एक कहावत कही जाती है "देहरी दीपक न्याय" जैसे दहलीज पर रखा हुआ दीपक कक्ष के भीतर और बाहर दोनों को एक साथ आलोकित करता है। डमरू का एक ही मणका उसे दोनों ओर से बजा देता है। ऐसे ही वक्ता की बातें वक्ता और श्रोता दोनों के लिए होती हैं। हम जो भी वक्तव्य देते हैं उसे अपने में पचायें, अपने जीवन में उतारें, अपने को संवारें तब उन स्वानुभव युक्त बातों का प्रभाव श्रोता के जीवन में अधिक पड़ता है।

14. पूर्णिमा के दिन समुद्र में ज्वार आता है अर्थात समुद्र का जल अपनी सतह से तट की ओर आगे बढ़ जाता है और भाटा के समय वही जल स्तर काफी पीछे चला जाता है। ठीक इसी प्रकार कभी हमारा मन कल्याण के अत्यंत निकट लगता है। जितने भी मनोविकार हैं वे सबके सब तिरोहित हो जाते हैं तो कभी भाटा के समान नाना विकार पुनः प्रवेश करने लगते हैं। साधक का काम है निरंतर साधनाभ्यास में लगे रहना।

15. हम दूध को किसी डिब्बा में गरम कर रहे हैं। हमें मालूम है कि गरम होने पर वाष्प बनेगा और ऊपर की ओर धक्का लगायेगा। इसी बीच हमें दूसरे काम का ख्याल हो गया। अभी दूध उबलने में समय लगेगा। हम डिब्बा को ढक्कन से ढंक देते हैं यह सोचकर कि अब तो दूध सुरक्षित ही रहेगा, बाहर फैलेगा नहीं, तब तक हमारा काम भी हो जायेगा। किन्तु जब हम लौटते हैं तो पाते हैं कि सारा दूध उबलकर ढक्कन को धकेलकर अथवा ढक्कन की सेंध से बाहर बह गया है। ऐसे ही हम अपने दोषों को दबाकर रख नहीं सकते। कभी न कभी यह बाहर प्रकट होंगे ही। हमारे अंदर जितने दोष होंगे उतने ही हम दुखी, पीड़ित और अशांत बने रहेंगे। यह भी याद रखें कि वासनाओं, कामनाओं को हम केवल फूंक मारकर बुझा नहीं सकते। निरंतर के साधनाभ्यास, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य की सहायता से धीरे-धीरे विकारों के बादल छटने लगते हैं फिर कहीं निर्मल आकाश मिलता है। समस्त विकारों का खात्मा हो जाना ही शांति-पथ है।

16. माना कि जीवन में धन का महत्त्व है, रिश्तों का महत्त्व है, परिवार का अपना महत्त्व है पर इन सबसे कीमती कोई वस्तु है तो वह है "मन की शांति"। आप शांति या सुख हीरे-मोती चुकाकर भी नहीं पा सकते और चाहें तो अपनी शांति भंग करके ये सब पा सकते हैं।

17. हर समय अपने चित्त-शांति का उपाय सोचते रहो और जितनी शांति वर्तमान में उपलब्ध है उसे बनाये रखने का प्रयास भी करते रहो, नित्य उसमें वृद्धि करते चलो। जिस क्षण हमारा मन कुछ नहीं सोचता अपने जीवन का सबसे बहुमूल्य समय वही होता है।

18. ध्यान है अच्छी तरह से चौकीदारी का काम। ध्यान में बैठें तो यह ध्यान रखें कि कौन-कौन से विचार हमारे मन में प्रवेश करने वाले हैं। अनर्थक विचारों को तो आने ही न दें। उसके लिए "प्रवेश निषेध" का बोर्ड लगा दें और सार्थक विचारों से कहें कि अभी तुम्हारी कोई आवश्यकता नहीं है। तुम बाद में आना। इतना करने से ध्यान का आनंद कई गुणा बढ़ जाता है। जो साधक यहां तक पहुंचा नहीं है उसे ठीक से प्रयास करना चाहिए और जिसे निद्रा या तन्द्रा सताती हो उसे भोजन-पानी छोड़कर भी ध्यान की सहजावस्था को प्राप्त कर लेना चाहिए क्योंकि संत-साधक के लिए जल-आहार से भी अधिक मूल्यवान है "ध्यान।"

19. अपने मन को नाना लोगों का सोहरौना न बनावें। हमें आगे बैठने को मिले, ऊपर बैठने को मिले, पूजा अधिक मिले, लोग हमें सम्मान दें। पुराने हैं इसलिए और अधिक सम्मान मिलना चाहिए। कोई सम्मान देता है तो आपका क्या बढ़ जाता है। कोई अपमान कर दिया तो क्या घट गया। दूसरों से सम्मान मिलने पर तो सिर्फ अहंकार बढ़ता है। और अहंकार पतन का ही सिग्नल है, विकास का नहीं। कोई हमारी गलतियां निकालता है तो हमें खुश होना चाहिए क्योंकि कोई तो है जो हमें पूर्ण दोषरहित बनाने के लिए अपना दिमाग और समय दे रहा है। अपमान-सम्मान, हानि-लाभ, पूजा-प्रतिष्ठादि से अपने मन को सदैव ऊपर रखने का अभ्यास निरंतर करते रहना चाहिए।

20. एक युवक अपने आप को युवती को समर्पित कर देता है, युवती युवक को, सिर्फ सुख पाने के भ्रमवश। क्या साधना के लिए इतना समर्पण है? सद्गुण, सिद्धांत और साधना हमारे व्यक्तित्व को संवारने के प्रबल साधन हैं। सद्गुण भ्रम का निवारण करते हैं, सिद्धांत बुद्धि को स्थिर करता है, साधना मन-इन्द्रियों की परतंत्रता से मुक्ति दिलाती है। अतः इन तीनों के प्रति दृढ़ आस्था पूर्वक, पूर्ण विश्वास के साथ संपूर्ण समर्पण की आवश्यकता है। देहभाव को त्यागकर पूर्ण समर्पित हुआ जा सकता है। ❑

क्या वेद नसली वर्गीकरण का गवाह है?

लेखक—श्री धर्मदास

(गतांक से आगे)

वाल्मीकि रामायण और महाभारत दोनों महाकाव्य माने गये हैं। दोनों की रचना ई.पूर्व में हुई थी। "जैकोबी के अनुसार रामायण के प्रथम (बालकाण्ड) और सप्तम (उत्तरकांड) पूर्णरूप से प्रक्षिप्त हैं।[1] विन्टर्निज का मत है कि रामायण का वर्तमान रूप निश्चित रूप से 200 ई. तक बन गया था।'[2] यदि यह मानकर चलें कि उत्तरकाण्ड पूर्णतः प्रक्षिप्त है जिसकी रचना 200 ई. के आस-पास हुई। उसमें मानव-सृष्टि का सूत्र इस काण्ड के 30वें सर्ग के श्लोक 19 एवं 20 के द्वारा प्रकाशित होता है। यह ब्रह्मा और इन्द्र के बीच का संवाद है। ब्रह्मा इन्द्र से कहते हैं—

अमरेन्द्र मया बुद्धया प्रजाः सृष्टास्तथा प्रभो।
एकवर्णाः समाभाषा एकरूपाश्च सर्वशः॥ 19॥

प्रभो! देवराज पहले मैंने अपनी बुद्धि से जिन प्रजाओं को उत्पन्न किया था, उन सबकी अंगकान्ति, भाषा, रूप और अवस्था सब बातें एक-जैसी थीं।

तासां नास्ति विशेषो हि दर्शने लक्षणेऽपि वा।
ततोऽहमेकाग्रमनास्ताः प्रजाः समचिन्तयम्॥ 20॥

उनके रूप और रंग आदि में परस्पर कोई विलक्षणता नहीं थी। तब मैं एकाग्रचित होकर उन प्रजाओं के विषय में विशेषता लाने के लिए कुछ विचार करने लगा।

यहां हम पाते हैं कि प्राचीन ब्राह्मण साहित्यों में—सन् 200 ई. तक प्रक्षिप्त में भी मनुष्य की जाति एक प्रकार की मानी गई है। महाकाव्यों के रचना काल तक वर्णव्यवस्था पूर्णतः विकसित थी तथापि नस्ल विभेद की बातें नहीं मिलती हैं। 20वें श्लोक में ब्रह्मा कहते हैं कि आगे प्रजा में कुछ विशेषता डालने का विचार कर रहा हूं। शंका हो सकती है कि ब्रह्मा कदाचित निम्नतर नस्ल की प्रजा को उत्पन्न करने पर विचार तो नहीं कर रहे थे? लेकिन 21वें श्लोक में शंका निर्मूल साबित होती है।

सोऽहं तासां विशेषार्थं स्त्रिमेका विनिर्ममे।
यद् यत् प्रजानां प्रत्यङ्गं विशिष्टं तत् तदुद्धृतम्॥ 21॥

विचार के पश्चात उन सब प्रजाओं की अपेक्षा विशिष्ट प्रजा को प्रस्तुत करने के लिए मैंने एक नारी की सृष्टि की। प्रजाओं के प्रत्येक अंग में जो-जो अद्भुत विशिष्टता-सारभूत सौंदर्य था, उसे मैंने उसके अंगों में प्रकट किया।

इसके आगे अहल्या नाम की सुन्दर स्त्री को उत्पन्न करने, गौतम मुनि को पत्नी रूप में देने तथा काम से पीड़ित होकर इन्द्र के द्वारा उसके साथ बलात्कार करने की कथा है। प्रजातिवाद या जातीयता का भाव कहीं नहीं आया है।

प्रजातीय विभेदीकरण प्राचीन भारतीय साहित्यों में नहीं मिलता। किन्तु 'भारत के अतीत का प्रथम गंभीर अध्ययन अठारहवीं सदी में उन विद्वानों के द्वारा आरंभ किया गया जिन्हें अब प्राच्यविद् या भारतविद् कहा जाता है। इस अध्ययन की शुरुआत मुख्य रूप से ईस्ट इंडिया कम्पनी की जरूरतों के कारण हुई, क्योंकि उसने जिन प्रदेशों पर अधिकार कर लिया था उनके सुचारू प्रशासन के लिए यह आवश्यक था कि उसके अफसरों को वहां के लोगों के कानूनों, आदतों और इतिहास की सही जानकारी हो।"[3] उन्नीसवीं सदी के मध्य तक स्थिति यह हो गई कि प्राच्यविदों की जमात में सिर्फ वही लोग शामिल नहीं रह गये जिनका ईस्ट इंडिया कंपनी के माध्यम से भारत से सीधा संपर्क था। सर्वाधिक प्रसिद्ध भारतविदों में कुछ तो कभी भारत

1. प्रा.भा. का राज. तथा सां. इतिहास, भाग-1, वि.च.पांडे, पृ. 200।
2. वही, पृ. 201।
3. प्राचीन भारत का सामाजिक इति., रोमिला थापर, अनु. आदित्य नारायण सिंह, पृ. 7-8।

आये ही नहीं। ऐसे ही विद्वानों का एक प्रमुख उदाहरण मैक्समूलर हैं।

प्राचीन भारतीय अतीत को पूर्वकालीन यूरोपीय संस्कृति के एक विस्मृत पहलू के रूप में देखा गया, और भारत के आर्यों को यूरोपीयों के निकटतम बौद्धिक रिश्तेदार माना गया। संस्कृत के अध्ययन पर जोर दिया गया। इस उपमहाद्वीप में आर्य और गैर-आर्य भाषाएं बोलने वालों के बीच तीव्र भेद किया गया, और आर्यों में अनेक उदात्त (अलौकिक) गुणों का आधान (कल्पना) किया गया।[1] 'भारतीय समाज में प्राच्यविदों ने जो खूबियां देखीं उन्हें उन्होंने अतिरंजित करके पेश किया। स्रोत सामग्री को उसकी समकालीन पृष्ठभूमि में रखकर देखने का कोई दीर्घ प्रयास नहीं किया गया। ये स्रोत विशेषतया संस्कृत स्रोत, मुख्य रूप से उन ब्राह्मणों की कृतियां थे जो प्राचीन क्लासिकी परंपरा के अभिरक्षक थे और जिन्होंने ब्राह्मणीय विश्वदृष्टि को अभिव्यक्त किया। इस बात को अकसर नजरअंदाज कर दिया गया कि ये पाठ समाज के एक खास हिस्से की देन और उसी से संबंधित थे। पंडितों पर, भाषा और विद्या में पारंगत तथा प्राचीन परंपरा के अभिरक्षक माने जाने वाले उन लोगों पर भरोसा करना प्राचीन इतिहास की जानकारी हासिल करने का सुविधाजनक मार्ग तो था लेकिन बहुत विश्वसनीय नहीं। जिस चीज को प्राचीन परंपरा की व्याख्या माना जाता था उसमें अकसर उन पंडितों के समकालीन विचारधारात्मक पूर्वग्रह भी शामिल कर लिए जाते थे। इससे 'प्राचीन संस्कृति' का, विशेषरूप से उसके उस हिस्से का अध्ययन दूषित हो गया जिसका संबंध धर्मशास्त्रों से था।'[2]

उपर्युक्त विश्लेषण का अभिप्राय स्पष्ट हो जाता है कि 18वीं शताब्दी में भारतवंशी ब्राह्मणों का एक वर्ग ऐसा था जो द्विजों को गैर-द्विजों की अपेक्षा उत्तम कुल-गोत्र का ही नहीं बल्कि ज्ञान-विज्ञान-सत्ता का वैधानिक एवं दैवीय उत्तराधिकारी मानता था। संस्कृत के पारंगत स्वयं को परंपरा एवं धर्मशास्त्र के संरक्षक के साथ उत्तम नस्ल का वंशज होने का दंभ भरते थे। यूरोपीयों ने जब उन्हीं रूढ़िवादी ब्राह्मणों के विचारों को प्रामाणिक, शास्त्रसम्मत, परंपरागत एवं यथार्थ मानकर अपना अनुसंधान बतलाकर भारत के आर्यों को अपना निकटतम बौद्धिक रिश्तेदार मान लिया तब रूढ़िवादियों के अहंकार को पर लग गये। इस तथ्य की पुष्टि रोमिला थापर के व्याख्यान से होती है जिसे उन्होंने 1974 ई. में कार्नेल में दिया था।

1. "वैदिक संस्कृत विशेषकर वैदिक साहित्य का भारत और भारोपीय दोनों समाजों के पुनर्निर्माण में खूब इस्तेमाल हुआ।

2. मैक्समूलर अपने समय के ऐसे ही प्रसिद्ध विद्वान थे। उन्होंने भारत के ग्राम समाज का इतना सर्वांगीण और गुणग्राही वर्णन किया है कि कोई यह सोच भी नहीं सकता था कि उन्होंने भारत की भूमि के दर्शन भी नहीं किये थे। इन्होंने प्रमाणों की काल्पनिक और अपनी रुचि के अनुकूल व्याख्या की।'[3]

3. "उन विदेशियों के अध्ययन के फलस्वरूप उन्नीसवीं सदी में जो सबसे प्रभावकारी सिद्धान्त प्रकट हुआ, वह था आर्य नस्ल का सिद्धान्त। आर्य शब्द ईरानी अश्वेता और संस्कृत ग्रंथों में आता है। इसे नस्ल के साथ जोड़कर आर्यों की एक नस्ल का सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया। इन्हें स्थानीय निवासियों से शारीरिक दृष्टि से पृथक बतलाया गया। वे सांस्कृतिक दृष्टि से भी विशिष्ट थे क्योंकि उनकी भाषा भारोपीय थी। यह भी माना गया कि आर्य भारोपीय नस्ल और भाषा परिवार की एक शाखा थे। उन्होंने बड़ी संख्या में उत्तर भारत पर ई.पू. द्वितीय सहस्राब्दी में आक्रमण कर स्थानीय निवासियों को पराजित किया तथा यहां वैदिक आर्य संस्कृति की स्थापना की जो आगे चलकर भारतीय संस्कृति की बुनियाद बनी। मैक्समूलर के जीवनकाल में यह सिद्ध हो चुका था कि भाषा की नस्ल से अभिन्नता बतलाना एक दोषपूर्ण तर्क है। मैक्समूलर

1. वही, पृ. 8।
2. वही, पृ. 9।
3. आदिकालीन भारत की व्याख्या, पृ. 2।

ने अपने जीवन में आगे जाकर अपनी भूल स्वीकार कर लिया था।

4. आर्यों की प्रमुखता का आधार उनके द्वारा दासों की पराजय बतलाया गया। वर्ण शब्द का अर्थ समाज में जाति संगठन का द्योतक माना जाता है। इसे भी आर्य-नस्ल सिद्धांत की पुष्टि में पेश किया गया। कहा गया कि चार वर्ण चार प्रमुख नस्ल वर्गों के प्रतिनिधि हैं जिनकी नस्लगत पहचान इनमें परस्पर विवाह के निषेध के जरिए और इसे जन्मना बतलाकर सुरक्षित रखी गई।"[1]

5. "आर्य-अनार्य के इस भेद दर्शन में यूरोप के संदर्भ में आर्य-सेमेटिक (रंग) भेद की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है जिसका आधार भाषा और नस्ल माना जाता था। यहां यह बतलाया गया कि आर्यों में ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य उच्च वर्ण हैं और शूद्र निम्न।"[2]

6. "बीसवीं सदी के प्रारंभ में भारतीय राष्ट्रवादी इतिहासकार आ जुड़े जिन्होंने आर्य नस्ल के सिद्धान्त को मान लिया।"[3]

7. "जाति पर आधारित समाज की तथाकथित व्याख्या उनके लिए प्रसन्नता की वस्तु थी। आर्यों के समाज की मुक्तकंठ से की जाने वाली प्रशंसा भारतीय विद्वानों को बड़ी कर्णप्रिय लगी। कुछ मध्य वर्ग के भारतीय यह सुनकर बड़े प्रसन्न हुए कि अंग्रेजों के आगमन से चचेरे भाइयों का मिलन हुआ जिनके पूर्वज अतीत में किसी कालबिन्दु पर बिछुड़ गये थे। उन्हें यह जानकर खुशी हुई कि अंग्रेज और वे दोनों एक ही प्राचीन आर्य नस्ल की संततियां हैं।"[4]

8. "आर्यों से संबंधित सिद्धान्त को चुनौती देने का आधार वे त्रिविध प्रमाण हैं जो हाल के वर्षों में पुरातत्त्व, भाषाविज्ञान और सामाजिक नृ-विज्ञान ने प्रस्तुत किए हैं। सिन्धु घाटी की सभ्यता के नगरों की खोज और उनके उत्खनन के फलस्वरूप भारत का इतिहास ई.पू. तृतीय सहस्राब्दी तक पहुंच गया है। अब भारतीय इतिहास का मूलाधार आर्य संस्कृति न होकर सैंधव सभ्यता हो गया है। सिन्धु घाटी के नगर वैदिक सभ्यता से कम से कम सहस्र वर्ष प्राचीन है। ई.पू. द्वितीय सहस्राब्दी के प्रारंभ में इन नगरों के क्षय और सहस्राब्दी के अंत में वैदिक संस्कृति के एक अंग के रूप में संस्कृत के प्रसार का प्रारंभ माना जाता है।"[5]

9. "पश्चिम भारत और भारतीय गंगा विभाजक में हाल में जो पुरातात्त्विक उत्खनन हुए हैं उनसे उपलब्ध प्रमाण इस बात की ओर इंगित करते हैं कि सिन्धु सभ्यता परवर्ती कालों में भी किसी न किसी रूप में जीवित रही। शृंखला टूटी नहीं। अब इस बात में कोई संदेह नहीं रह गया है कि सिन्धु सभ्यता के अनेक तत्त्व ई.पू. द्वितीय और प्रथम सहस्राब्दियों में इन नगरों के पतन के उपरान्त की सभ्यताओं में जीवित रहे। सिन्धु सभ्यता और वैदिक संस्कृति के बीच अंतराल की जो बात कही जाती थी, अब वह मान्य नहीं रही। अब सिन्धु सभ्यता को पुरातन भारतीय संस्कृति की तल-शिला (नींव) माना जाता है।"[6]

10. "यूरोपियन विद्वानों द्वारा भारत के समाज का अध्ययन अठारहवीं सदी के उत्तरार्ध में प्रारंभ हो गया था। यही अध्ययन उन्नीसवीं सदी में नस्ल के सिद्धान्त के रूप में विख्यात हुआ।"[7]

11. "यूरोप में आर्य और सेमेटिक के रूप में द्विभाजन माना गया, भारत में आर्य और द्रविड़ दो विभाग माने गये और यह कहा गया कि ऊंची जातियां आर्यों की संतानें हैं। यह प्रतिपादित किया गया कि आर्य लोग अनार्यों से श्रेष्ठ थे क्योंकि वे ही प्रथम विजेता थे जिन्होंने यूरोप और एशिया की सभ्यताओं को जन्म दिया। भारत में आर्यों के आगमन का संबंध ऋग्वेद के संपादन से जोड़ा गया। इसे भारतीय सभ्यता की आधारशिला माना गया। उस समय तक सिन्धु घाटी के उत्खनन नहीं हुए थे। बहरहाल, जहां तक भारत का संबंध है, यह सिद्धान्त यूरोपीय मस्तिष्क में पूरी तरह

1. वही, पृ. 3।
2. वही, पृ. 4।
3. वही, पृ. 6।
4. वही, पृ. 7।
5. वही, पृ. 8।
6. वही, पृ. 8-9।
7. वही, पृ. 24।

स्थापित था ही, भारत के मध्यवर्गीय संभ्रांत समाज ने भी इसे स्वीकार कर लिया। उसने विश्वास कर लिया कि निचली जातियां अनार्यों की संतान हैं और स्वयं वे आर्य हैं। उन्होंने इस प्रकार ब्रिटिश शासकों के साथ अपनी भाई बिरादरी का संबंध ढूंढ़ना प्रारंभ किया क्योंकि ये यूरोपीय आर्यों के वंशज थे।

12. जाति समाज का खुलासा यह कहकर किया गया कि इसका आधार नस्ल के आधार पर पृथकता है जिसमें ऊंची जातियों वाले आर्य नस्ल के हैं। जातिप्रथा के समर्थन में यह तर्क दिया गया कि यह वैज्ञानिक तरीके से समाज का विभाजन है जिसका आधार नस्ल है। यह धारणा धीरे-धीरे दृढ़ होती गई कि जाति समाज दरअसल नस्ल के आधार पर पृथकता का सूचक है।''

13. ''रिजली ने अपनी पुस्तक दि पीपुल आफ इंडिया (1908) में नस्ल के सिद्धान्त को पुनर्जीवित किया। उसने यह तर्क दिया कि जाति के मूल में कबीला है जिसकी स्मृति वहिर्विवाही (एक्से, गैमन्स) समूहों जैसे गोत्र में बची हुई है। किन्तु इस सिद्धान्त के स्थान पर एक दूसरा सिद्धान्त प्रकट हुआ जिसने नृजातीय भेदों को जाति का आधार बतलाया। इसके जीवाणु सफेद और काली नस्लों में दुश्मनी में जैसे ऋग्वेद के आर्यवर्ण और दासवर्ण के बीच मिलते हैं। इनकी पृथकता को कायम रखने के लिए बड़ी सावधानी से जाति के भीतर विवाह का नियम बनाया गया। उसने ब्राह्मण ग्रन्थों में उल्लिखित वर्णसंकर सिद्धांत को अक्षरशः मानकर यह घोषित किया कि छोटी जातियां वर्णसंकर संतानें हैं। जातिगत सोपान (हाईराकी) का आधार नृजातीय पृथकता है जिसमें आर्यों ने ऊंची जातियों के रूप में अपनी शुद्धता सुरक्षित रखी है, यहां के आदिमवासी निचली जातियों में शेष रह गये हैं। रिजली की मान्यता थी कि नस्ल उत्पत्ति का हेतु है। इसे सिद्ध करने के लिए उसने नृजातीय माप, विशेषकर नासा-सूचकांक का इस्तेमाल किया।''[1]

14. ''जेम्स मिल आदि उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ वाले इतिहासकार आंशिक रूप से उपर्युक्त सिद्धान्त को मानते थे। धीरे-धीरे इस सिद्धान्त ने इंग्लैंड में जड़ पकड़ ली और उस सदी के मध्य में तो भारतीय समाज और राजनीति को समझने के लिए इसे स्वयंसिद्ध सिद्धान्त मान लिया गया। इसका नतीजा यह हुआ कि जिलों में नियुक्त ब्रिटिश शासकों ने जो भी रिपोर्ट तैयार की उनमें कमोवेश इस मान्यता की प्रतिध्वनि आवश्यक रूप में विद्यमान है।''[2]

15. ''बूग्ली ने यांत्रिक एकता (सोलिडरिटी) के प्रकाश में जाति की परीक्षा की। उसने प्रारंभ में यह देखने का यत्न किया कि क्या जातिप्रथा भारत की अपनी चीज है या सामान्य तौर पर अन्य समाजों में भी इस प्रकार के विकास हुए हैं। इस व्यवस्था की जड़ों की खोज करते हुए बूग्ली ने इस बात से असहमति व्यक्त की कि इस प्रथा का प्रारंभ ब्राह्मणों ने किया और इसके पीछे उनका उद्देश्य समाज को विभाजित कर उस पर नियंत्रण रखना था।''[3]

16. ''जिन विचारों ने जाति व्यवस्था को जन्म दिया वे हिन्दुओं या आर्यों की ही विशेषता न थे। ऐसे विचार सभी आदिम जातियों में समान रूप से प्रचलित थे। भारत में ये बच रहे हैं क्योंकि यहां ऐसी कोई ताकत न थी जो सभी को एकता के सूत्र में बांध सकती। इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दू सभ्यता की विशेषता यह है कि इसमें सामाजिक विकास एक बिंदु पर पहुंचकर अवरुद्ध हो गया है। भारतीय समाज उलटी दिशा में चल पड़ा, इसके टुकड़े-टुकड़े होते रहे हैं। यहां विशेषीकरण होता आया है और ऊंच-नीच के भेद बनते चले आये हैं जबकि दूसरे समाजों में एकता आती गई, वे निरंतर गतिशील और हमवार (फा.-समतल, चौरस, अंगीकृत) होते गये।''[4]

उपर्युक्त विवेचनाओं से स्पष्ट हो गया है कि जाति व्यवस्था और ऊंच-नीच की भावना का प्रचार-प्रसार ईस्ट इंडिया कंपनी एवं ब्रिटिश शासन काल में तेजी से हुई। साम्राज्य कायम रखने की नीयत के अंतर्गत उनकी अनेक योजनाएं सामाजिक विभाजन को दृढ़ता प्रदान

1. वही, पृ. 26-27।
2. वही, पृ. 29।
3. वही, पृ. 32।
4. वही, पृ. 34।

करने में सहायक सिद्ध हुई। ब्रिटिश राज्य में जनगणना की रिपोर्टों, जिनमें जाति का माडल हिन्दू धर्मशास्त्रों पर आधारित रूढ़िवादी व्याख्या तथा श्रमण-धर्मशास्त्रों को नजरअंदाज कर देना, का निष्कर्ष भयानक विभाजन का कारक बना। अंग्रेज शासकों और मुस्लिम नेताओं की साजिश के फलस्वरूप तीन-चौथाई आबादी को अछूत जातियों के रूप में चिन्हित करके हिन्दू समाज के बीच जो महीन विभाजक रेखा थी उसे कभी न पाटने वाली गहरी खाई का रूप दिया गया।

'मूल ग्रन्थों तक पहुंच न होने के कारण सबसे अधिक हानि बौद्ध धर्म के विश्लेषण की हुई, जिसके प्रति न्याय नहीं हुआ। उस काल के भारतीय विद्या विशारदों (इंडोलोजिस्ट) ने पालि में लिखे बौद्ध थेरवादी ग्रन्थों की अपेक्षा संस्कृत में लिखे ब्राह्मण-ग्रन्थों को अधिक विश्वसनीय माना। अचरज की बात यह है कि बौद्ध ग्रंथों को पूर्वग्रह से ग्रसित माना गया और संस्कृत सामग्री को निष्पक्ष। यह बात और भी अचरज की है कि बौद्ध ग्रंथों की रचना प्रायः उसी काल में या उसके ठीक बाद हुई जब संस्कृत ग्रंथों की। और बौद्ध धर्म उस समय उतना ही महत्त्वपूर्ण था जितना ब्राह्मण धर्म।"[1]

"ईसाई मिशनरियां भारतीय धर्मों को आदिम (प्रिमिटिव) मानती रही। संस्कृत ग्रंथों के अंग्रेजी में जो भी अनुवाद हुए उनमें प्रायः भारतीय धार्मिक कल्पनाओं को ईसाई धर्म की शब्दावली में अनुदित किया गया। अध्ययन के लिए जिन पुस्तकों का चयन किया गया, उसमें भी खास उद्देश्य था। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने हिन्दू विधि संहिता का निर्माण करते समय सामाजिक रीतियों और प्रथाओं को ही कानून का रूप दिया। कानून की संकल्पना में इस बात की आवश्यकता होती है कि कानून की परिभाषा एक संश्लिष्ट (कोहेसिव) विचार-धारात्मक संहिता के रूप में दी जाये। उदाहरणार्थ, मनु के धर्मशास्त्र को हिन्दुओं का कानून माना गया। मनुस्मृति बुनियादी तौर पर ब्राह्मणस्मृति है किन्तु यह सब पर समान रूप से लागू मानी गई।"[2]

ढाई हजार वर्षों के भारतीय इतिहास में ई.पू. द्वितीय सदी के मगध-नरेश पुष्यमित्र शुंग के समानान्तर मनु एवं उसकी रचना मनुस्मृति का नाम लिया जाता है। अधिकतर विद्वान मानते हैं कि ईसवी सन् दो-तीन सदी तक मनुस्मृति में प्रक्षिप्त रचना डाला गया है। रामशरण शर्मा तो मानते हैं कि मनुस्मृति का दसवां अध्याय, जिसमें वर्णसंकर जातियों की उत्पत्ति का वर्णन मिलता है, पांचवीं सदी के गुप्त शासन-काल में जोड़ा गया। फिर भी इस अध्याय के विधान उतने खतरनाक नहीं हैं जितने रिजली के आर्य-अनार्य नस्ल का सिद्धांत है। देखें —

(1) वर्णापेतमविज्ञातं नरं कलुषयोनिजम्।
आर्यरूपमिवानार्यं कर्मभिः स्वैर्विभावयेत्॥ 10/56॥
अनार्यता निष्ठुरता क्रूरता निष्क्रियात्मता।
पुरुषं व्यञ्जयन्तीह लोके कलुषयोनिजम्॥ 10/57॥

कलुषित जन्म के नर रंग से आर्य दीखते हों, लेकिन उनके कर्म उनका परिचय देता है। उनकी अनार्यता की पहचान व्यक्ति की निष्ठुरता, क्रूरता, एवं कर्मानुष्ठान का अभाव करा देता है। जबकि उन्नीसवीं सदी से अंग्रेज शासक ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य को आर्य और ऊंची नस्ल तथा शूद्र को अनार्य और निम्न नस्ल मानकर प्रशासनिक कार्य का संपादन किया करते थे। विगत ढाई हजार वर्षों के भारतीय इतिहास में महाराष्ट्र प्रांत के मराठा एवं पेशवा के शासनकाल में मनुस्मृति को हिन्दू-कानून संहिता का दर्जा मिला, उसके अलावा किसी राजा के समय मनुस्मृति को मान्यता नहीं मिली। अंग्रेज-शासकों ने मनु के धर्मशास्त्र को हिन्दुओं का कानून मानकर सारे ब्रिटिश भारत पर लागू कर दिया। इस संदर्भ में अंग्रेजों को सबसे बड़ा मनु कहना सर्वथा उचित है।

सच्चिदानंद सिन्हा लिखते हैं : "धर्मशास्त्रों की मान्यता चाहे जो रही हो, अंग्रेजी हुकूमत के आने और उनकी शिक्षा पद्धति लागू होने से पैदा वस्तुस्थिति यही बतलाती थी कि नयी शिक्षा के प्रणेता अंग्रेज विद्वान ही नये ब्राह्मण थे और विजेता तथा शासक अंग्रेज ही नये क्षत्रिय भी थे।"[3] ❑

1. वही, पृ. 49।
2. वही, पृ. 63।
3. जाति का जहर (निबंध संग्रह, लेखक-सच्चिदानंद सिन्हा (इतिहास की चुनौती), पृ. 36 सं. राजकिशोर।

व्यवहार वीथी

जीवन सुंदर कैसे बने?

हर आदमी के मन में लंबे जीवन जीने की लालसा होती है और जो अधिक आयु तक लंबा जीवन जीता है उसे सौभाग्यशाली माना जाता है, परंतु महत्त्व इस बात का नहीं है कि किसने कितनी लंबी आयु पायी और कितना लंबा जीवन जीया किन्तु महत्त्व इस बात है कि किसने कैसा जीवन जीया और जीकर क्या किया। अधिक लंबी आयु तक जीना हमारे हाथों में नहीं है, किन्तु खुशहाल, प्रसन्न, शांत, संतुष्ट-सुखी जीवन जीना हमारे हाथों में है। खुशहाल जीवन जीने के लिए बड़े वैभव, पद, प्रतिष्ठा आदि की आवश्यकता नहीं है किन्तु आवश्यकता है सुंदर विचार, दृष्टिकोण, कर्म और आचरण की और अपने विचार, दृष्टिकोण, कर्म एवं आचरण को कैसे बनाना है इसके लिए हर मनुष्य सर्वथा स्वतंत्र है।

किसी भी काम को सुव्यवस्थित ढंग से संपादित करने के लिए कुछ नियमों एवं सूत्रों की आवश्यकता होती है यही बात सुंदर, खुशहाल, प्रसन्न, शांत-सुखी जीवन जीने के लिए भी लागू होती है। जीवन को सुंदर, खुशहाल, सुखी बनाने के अनेक सूत्रों में से कुछ सूत्र इस प्रकार हैं—

1. प्राप्त समय, शक्ति, योग्यतानुसार सदैव कर्मशील एवं सेवापरायण रहें, जब जो प्राप्त हो उसमें संतुष्ट रहें और जो नहीं मिला या मिलकर छूट गया उसके लिए कोई चिंता एवं शिकायत न करें।

2. कर्तव्य पालन करने, सेवा करने एवं त्याग तथा सहन करने में सदैव आगे रहें, किन्तु सुविधा प्राप्त करने तथा भोग-स्वार्थ में सदैव पीछे रहें। इससे न किसी के प्रति कोई शिकायत होगी न मन में कोई क्षोभ रहेगा।

3. यदि किसी के साथ रहना है या किसी को साथ रखना है तो किसी प्रकार की कोई शर्त न रखें। जिसके साथ रहना है या जिसको साथ रखना है उनसे किसी प्रकार आग्रह, कामना, अपेक्षा न रखें, किन्तु निष्काम, संतुष्ट रहकर सेवापरायण रहें।

4. किसी की कड़वी-कटु वाणी का उत्तर वैसी ही कड़वी-कटु वाणी में न देकर मीठी वाणी में दें। दूसरों से कड़वी-कटु बात बोलने वाला अपने लिए मीठी वाणी ही चाहता है। कड़वी-कटु वाणी अपनों को पराया और निकट वालों को दूर बना देती है तो मीठी-कोमल वाणी परायों को अपना और दूर वालों को निकट बना देती है।

5. मीठी एवं कोमल वाणी तो बोलें किन्तु उसमें किसी प्रकार का छल, कपट एवं स्वार्थ भाव नहीं होना चाहिए। मन में छल-कपट एवं स्वार्थ भाव रखने वाला कभी खुशहाल-प्रसन्न जीवन नहीं जी सकता।

6. यह दोहा सदैव याद रखें—"कागा काको धन हरे, कोयल काको देय। अपनों शब्द सुनाय कर, जग जस अपजस लेय।" कौआ किसी का कुछ छीनता नहीं है और कोयल किसी को कुछ देती नहीं है। दोनों अपनी-अपनी कटु-मीठी वाणी से संसार में अपयश और यश पाते हैं। ध्यान रखें, कड़वी-कटु वाणी बोलने वालों का मीठा शहद और गुड़ भी जल्दी नहीं बिक पाते किन्तु मीठी-कोमल वाणी बोलने वालों का कड़वा करेला और मिर्चा भी जल्दी बिक जाते हैं।

7. अत्यधिक खुशी, दुख, शोक, क्रोध की स्थिति में किसी को किसी प्रकार का कोई वचन न दें और न ऐसी स्थिति में किसी की कही बातों का बुरा मानें तथा उस पर विश्वास करें, क्योंकि उस समय आदमी की विवेक-बुद्धि काम नहीं करती। आदमी को खुद पता नहीं रहता कि मैं क्या कह रहा हूं और क्या कर रहा हूं।

8. अपने दिमाग को किसी कारखाने की लोहा गलाने वाली भट्ठी न बनने दें। इसकी आंच से आप तो जलेंगे ही सारे रिश्ते-नाते झुलस जायेंगे। दिमाग को आइस फैक्टरी बनाकर रखें। इससे आप स्वयं शांत रहेंगे ही आपके संपर्क में रहने एवं आने वाले सबको शीतलता मिलती रहेगी।

9. अपनी जुबान को कीटनाशक-जहर बनाने वाली फैक्टरी न बनाकर सुगर फैक्टरी बनायें। बाहर का जहर

तो केवल पीने वाले को ही मारता है लेकिन जुबान का जहर पिलाने एवं पीने वाले सबको आहत, बेचैन एवं दुखी बना देता है। इसलिए जुबान को सुगर फैक्टरी बनाकर रखें। स्वयं मीठे रहें और दूसरों को भी मिठास का अनुभव कराते रहें।

10. ब्लड में सुगर की मात्रा कितनी है यह जानने के पहले यह जानें कि जबान (वाणी) में सुगर की मात्रा कितनी है। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए ब्लड में सुगर की एक निश्चित मात्रा जरूरी होती है। निश्चित मात्रा से सुगर के घट जाने या बढ़ जाने से शरीर रोगी हो जाता है। किन्तु ध्यान रखें, जबान में सुगर की मात्रा जितनी घटती जायेगी रिश्ते उतने कमजोर होते जायेंगे और टुट जायेंगे। इसके विपरीत जबान में सुगर (मिठास) की मात्रा जितनी बढ़ती जायेगी रिश्ते उतने मजबूत एवं मैत्रीपूर्ण होते जायेंगे। शरीर में सुगर की मात्रा भले घट जाये जबान में तो बढ़ती ही जानी चाहिए।

11. किसी की गलती, भूल, बुराई, दोष की न तो बराबर चर्चा करते रहें और न याद। इससे अपना मन तो मलिन होगा ही, परस्पर का व्यवहार भी कटु होता चला जायेगा। जितना संभव हो दूसरों के बारे में चर्चा करने से बचें। यदि दूसरों के बारे में चर्चा ही करनी हो तो उनकी अच्छाइयों की, सद्गुण-सदाचार-सद्व्यवहार की चर्चा करें और याद भी। इससे अपना मन उनके प्रति कोमल बना रहेगा साथ ही पारस्परिक व्यवहार भी।

12. छोटी-बड़ी गलती या भूल सबसे हो जाती है। कहा भी गया है—भूल करना मानवीय है। यदि साथियों से छोटी-बड़ी कोई गलती या भूल हो गयी है तो उसे भूल जायें। उसकी याद न करते रहकर उन्हें क्षमा कर दें। किन्तु यदि स्वयं से कोई गलती या भूल हुई है तो उसे स्वीकार कर लें। दलील-तर्क देकर उसे सही सिद्ध करने की चेष्टा न करें। याद रखें, दलील देकर अपनी गलती को सही सिद्ध करना मूर्खों का काम है और अपनी गलती को स्वीकार कर उसे सुधार लेना बुद्धिमानों का। स्वयं सोचें, अपनी गणना किसमें करवाना चाहते हैं।

13. यदि किसी की गलती के लिए कोई दंड देना आवश्यक हो तो मातृ-हृदय रखकर दंड दें। बच्चे की किसी गलती पर मां उसे चांटा भी लगाती है तो उस समय भी उसके मन में बच्चे के लिए दया-करुणा एवं स्नेह का ही भाव रहता है। याद रखें, मां के क्रोध में भी बच्चे के लिए अहित-भावना न होकर सदैव सुधार-भावना एवं कल्याण-कामना ही रहती है। कहा गया है कि जब मां बच्चे को चांटा लगाती तो उसका हाथ मारता है और हृदय रोता है।

12. जिन लोगों के साथ नित्य रहना, काम करना एवं मिलना-जुलना होता है, खासकर परिवार के सदस्यों एवं मित्रों के साथ व्यवहार को सुंदर-प्रेमपूर्ण बनाकर रखना है, पारस्परिक संगठन, एकता बनाकर रखना है और उन्हें खुश रखना है तो अंग्रेजी के टी (T) अक्षर से प्रारंभ होने वाले पांच शब्दों को सदैव याद रखें और प्रयोग में लाते रहें—1. ट्रस्ट (Trust) अर्थात विश्वास। परिवार के सदस्यों एवं मित्रों पर विश्वास रखें। 2. टाइम (Time) समय। प्रतिदिन समय निकाल कर कुछ देर उनके साथ जरूर बैठें। साथ बैठते रहने से रिश्तों में निकटता बनी रहती है। 3. टाकिंग (Talking) बातचीत। साथ बैठकर बात जरूर करें। बातचीत करते रहने से एक-दूसरे की आवश्यकता, समस्या, मनोभाव, दुख-दर्द का पता चलता रहता है। परस्पर स्नेह की डोर मजबूत बनी रहती है तथा प्रेम का दीप जलता रहता है। 4. टच (Touch) संपर्क। बराबर संपर्क बनाकर रखें। इससे दूरी घटकर निकटता बनी रहती है। 5. टीयर (Tear) सहना। साथियों से व्यवहार-बातचीत में कुछ भूल-गलती हो जाये तो उन्हें सहन कर लें। तथा नजरअंदाज कर दें।

13. यदि किसी का दिल जीतना है और उसके दिल में अपने लिए जगह बनानी है, किसी का प्रिय पात्र बनना है तो अच्छे श्रोता बनें। सुनायें कम, सुनें ज्यादा। ज्यादातर लोग दूसरों की न सुनकर अपनी ही बात सुनाना चाहते हैं और ऐसा करके वे दूसरों के दिल से उतर जाते हैं। इसलिए सुनायें कम, सुनें ज्यादा। किसी को तो यह लगना चाहिए कि कोई मेरी बात भी सुनने वाला है। हो सकता है कि सामने वाले की बातें

तथ्यहीन, निरर्थक एवं घिसी-पिटी हों परंतु उन्हें भी धैर्यपूर्वक सुनकर तो देखें कि इससे उसको कैसी प्रसन्नता मिल रही है और उसके मन में आपके लिए कैसा प्रेम उमड़ रहा है।

13. किसी का दिल जीतना है तो सामने वाले की चापलूसी एवं स्वार्थभावना से रहित होकर सच्चे दिल से सच्ची प्रशंसा करें। अपनी प्रशंसा सुनकर सबको खुशी होती है। प्रशंसा तो अवश्य करें किन्तु झूठी प्रशंसा न करें और किसी की बुराई को अच्छाई, दुर्गुण को सद्गुण बताकर प्रशंसा न करें।

14. प्रायः हर आदमी को दूसरों की निंदा तथा अपनी प्रशंसा सुनना बहुत अच्छा लगता है और दूसरों की प्रशंसा तथा अपनी निंदा सुनना बुरा लगता है, परंतु याद रहे, ऐसा स्वभाव केवल पतन का पथ है। जो आदमी दूसरों की निंदा तथा अपनी प्रशंसा सुनकर खुश होता है और अपनी निंदा तथा दूसरों की प्रशंसा सुनकर नाखुश होता है उसके व्यक्तित्व में कभी निखार नहीं आ सकता और न वह कोई बड़ा काम कर सकता है। यदि अपने व्यक्तित्व में निखार लाना है और स्वयं सब समय प्रसन्नचित्त रहना है तो प्रशंसा पाने लायक अच्छा काम करते रहें किन्तु प्रशंसा पाने एवं सुनने की चाहना बिलकुल न रखें।

15. याद रखें, पूजा उनकी नहीं होती जिनका चेहरा (चित्र) सुंदर होता है किन्तु पूजा उनकी होती है जिनका चरित्र सुंदर होता है। इसी प्रकार पूजा उनकी नहीं होती जिनका कैरियर (पद) ऊंचा है किन्तु पूजा उनकी होती है जिनका करेक्टर ऊंचा है। इसलिए चित्र (चेहरा) और कैरियर संवारने-सुधारने की अपेक्षा चरित्र-करेक्टर को संवारें-सुधारें। यदि चरित्र बेचकर चेहरा (चित्र) बना रहे हैं और करेक्टर बेचकर कैरियर बनाना या पाना चाहते हैं तो आपने गलत दिशा में कदम उठा लिया है। करेक्टर बेचकर कैरियर तो पा जायेंगे तथा चरित्र बेचकर चित्र (चेहरा) संवार लेंगे किन्तु कभी सुखी, शांत, संतुष्ट जीवन नहीं जी पायेंगे। आपका चेहरा चमकता और हंसता रहेगा किन्तु दिल सदैव रोता रहेगा। याद रखें, चेहरा-कैरियर सदैव क्षणिक होता है। लोग आज याद रखेंगे और कल भूल जायेंगे किन्तु चरित्र-करेक्टर स्थायी होता है, उसे लोग अपने दिल में संजोकर रखेंगे। इसलिए चित्र (चेहरा) को नहीं चरित्र को तथा कैरियर को नहीं करेक्टर को सुंदर बनाकर रखें।

16. यह प्रकृति का नियम है कि मनुष्य का बच्चा पैदा होने के तुरंत बाद रोने लगता है, परंतु यदि वह जिंदगी भर रोता रहा और दूसरों को रुलाता रहा तो उसका जीवन सर्वथा असफल ही रहा, भले ही वह दुनिया के माने गये सारे ऐश्वर्यों से संपन्न रहा हो। जीवन तो उसका ही सफल रहा और उसका ही जीना सार्थक रहा जो स्वयं हंसता रहा और दूसरों को हंसाता रहा तथा हंसते-हंसते दुनिया से विदा हुआ। इसलिए जीवन ऐसा न जीयें और कोई भी कर्म-व्यवहार-आचरण ऐसा न करें कि आपके कारण किसी की आंखों में आंसू आ जाये और उसके होठों की हंसी-मुस्कान गायब हो जाये। किन्तु जीवन ऐसा जीयें और कर्म-व्यवहार-आचरण ऐसा करें कि आपके लिए किसी की आंखों में आंसू आ जाये। कबीर साहेब के शब्दों में कहें तो "ऐसी करनी कर चलो, तुम हंसो जग रोये।"

17. यदि जीवन को ऊपर उठाना है तथा लोगों से सुंदर व्यवहार एवं प्रेमपूर्ण रिश्ते बनाकर रखना है तो दो बातों पर सदैव ध्यान दें। 1. जब अकेले में रहें तो अपने विचारों को सम्हालकर रखें तथा 2. जब लोगों के बीच रहें तो जबान को सम्हालकर रखें। विचारों को सम्हालकर रखने से जीवन में गिरावट नहीं आयेगी और जबान को सम्हालकर रखने से रिश्तों में गिरावट नहीं आयेगी। आदमी वह नहीं होता जैसा वह बाहर से दिखाई देता है किन्तु आदमी वह-वैसा होता है जैसा उसके अंदर विचार-ख्यालात होते हैं। वस्तुतः विचार ही जीवन है। जैसा विचार वैसा जीवन। इसलिए और कुछ सुंदर बना सकें या न बना सकें विचारों को, चिंतन को सुंदर बनाकर रखें। जीवन सार्थक हो जायेगा। आप जहां रहेंगे आपके सुंदर कर्म-आचरण-व्यवहार की सुवास से लोग सुवासित होते रहेंगे।

—धर्मेन्द्र दास

क्रोध पर कैसे काबू पायें?

लेखक—श्री ललितप्रभ जी महाराज

(गतांक से आगे)

'कैसे बचें क्रोध से' इसके सूत्र तलाशने से पूर्व मैं एक बड़ी प्यारी सी घटना का जिक्र करना चाहूंगा।

घटना कुरान शरीफ़ की है। मोहम्मद साहब के नाती का नाम खलीफा हुसैन था। उस समय का जमाना गुलामों का था। मनुष्य खरीदे-बेचे जाते थे। गुलामों के साथ अमानवीय व्यवहार किया जाता था। तिस पर खलीफा हुसैन तो मानो क्रोध के अवतार ही थे। अगर वे किसी गुलाम से खफा हो जाते तो सिवा मौत के वे अन्य कोई सजा ही न देते। एक दिन खलीफा हुसैन अपने महल में नमाज अदा कर रहे थे। तभी एक गुलाम अपने हाथ के बर्तन में उबलता हुआ पानी लेकर उधर से निकला। अचानक उसे ठोकर लगी और बरतन हाथ से छूट गया और गरम पानी नीचे फैल गया। कुछ बूंदे नमाज पढ़ते हुए खलीफा हुसैन पर भी जा गिरीं। वह चौंक गया और गुस्से से भर गया। चूंकि उस समय वह नमाज़ अदा कर रहा था अतः उठ नहीं सकता था।

उधर गुलाम ने सोचा कि आज तो मौत का फरमान जारी होकर ही रहेगा। उसकी आंखों के सामने मौत नाचने लगी। तभी पास में रखी हुई पवित्र कुरान की पुस्तक उसने उठा ली। वह उसके पन्ने उलटने लगा और खुली पुस्तक हाथ में रख ली। वह सोचने लगा कि अब तो मरना ही है। मरने से पहले कुरान की कुछ आयतों का पाठ ही क्यों न कर लूं। कुरान के पन्नों पर जहां उसकी नजर पड़ी, उसने पहली आयत पढ़ी, 'जन्नत उनके लिए है जो अपने क्रोध पर काबू रखते हैं।' खलीफा के कानों में ये शब्द पड़े और वह सचेत हो गया। उसने स्वयं को देखा कि उसके अंदर गुलाम के प्रति क्रोध उमड़ रहा है। वह पीछे मुड़ा और बोला, 'हां-हां, मेरा गुस्सा मेरे काबू में है।' गुलाम ने सोचा कि कुरान की आयत काम कर रही है। एक सच्चा मुसलमान हर बात का इन्कार-तिरस्कार कर सकता है लेकिन कुरान के शब्द उसके लिए पत्थर की लकीर होते हैं। तभी गुलाम ने अगली आयत पढ़ी, 'जन्नत उनके लिए है जो गलती करने वालों को माफ कर देते हैं।' जब यह पवित्र वाक्य खलीफा हुसैन ने सुना तो वह फिर चौंका और सोचा कि यह आयत तो सिर्फ उसी के लिए कही गई है। उसने पुनः सिर ऊंचा किया और कहा, 'जा, मैंने तेरी गलतियों को माफ किया।'

गुलाम तो खुश हो गया कि कुरान की दो आयतों ने कमाल कर दिया। तब उसने तीसरी आयत पढ़ी, 'खुदा उनसे प्यार करता है जो दयालु होते हैं।' अब तो खलीफा हुसैन की आत्मा कांप गई। वह स्वयं को रोक न पाया और नमाज़ अदा करते हुए बीच में से उठ आया। वह गुलाम के पास जा पहुंचा, उसे गले लगाया और दीनारों की थैली देते हुए कहा, 'जा, मैंने तुम्हें गुलामी से मुक्त किया।' गुलाम चला गया, खलीफा अपने काम में व्यस्त हो गया लेकिन कुरान की ये तीन आयतें मनुष्य-जाति के लिए वरदान बन गईं।

मेरा खयाल है कि ये तीन सूत्र हमारे जीवन में उतर जाने चाहिए तभी हम क्रोध को कैसे काबू कर सकते हैं यह सीख पायेंगे। ये शब्द किसी सुरीले संगीत की तरह हैं जो हमारे जीवन को सुखद बना सकते हैं। ये पवित्र शब्द हिमालय की किसी चोटी को छूकर आई हुई किरण की ही तरह हैं जो जीवन को सतरंगा बना दें। ये आयतें हमारे अन्तर हृदय में उतर जानी चाहिए। सदा याद रखें—जन्नत यानी स्वर्ग उनके लिए है जो अपने गुस्से को काबू में रखते हैं, और जन्नत उनके लिए है जो गलती करने वालों को माफ कर दिया करते हैं, ईश्वर उन्हीं से प्रेम करता है जो दयालु और क्षमाशील होते हैं।

हमारी सबसे मैत्री हो, सबसे निकटता हो। आप नहीं जानते कि जिन संबंधों को वर्षों तक तराश कर बनाया जाता है, वे दस मिनिट के क्रोध से समाप्त हो

जाते हैं। क्रोध से शरीर का भी क्षय होता है। क्रोधी व्यक्ति कभी हृष्ट-पुष्ट नहीं हो सकता। क्रोध उसके पुद्गल-परमाणुओं को जला देता है। जो ऊर्जा ऊर्ध्वगमन कर हमें शक्ति प्रदान कर सकती थी, वह क्रोध में जलकर नष्ट हो जाती है। काम की तरह क्रोध से भी शक्ति का नाश होता है।

मैंने देखा है कि लोग क्रोध करना भी अपनी इज्जत समझते हैं। उनका मानना है कि क्रोध करने से दूसरे लोग उनकी बात मान जायेंगे। वे इसमें भी अपने अहंकार को पोषित करते हैं। अरे, क्या क्रोध किसी को इज्जत दे पाया है? उसमें तो अनादर का भाव ही भरा है। फिर हम क्रोध पर कैसे विजय पायें? इसके लिए मैं कुछ उपयोगी सुझाव देना चाहता हूं।

क्रोध-मुक्ति के टिप्स

क्रोध मुक्ति के लिए पहला सूत्र है, 'कल पर टालो किसी की गलती या विपरीत टिप्पणी को।' आपको गुस्सा आ गया तो मैं कहूंगा कि आप अपने क्रोध को अवश्य प्रकट करें पर इसकी लपट कहीं आपको न जला बैठे, अतः आप अपने गुस्से को चौबीस घंटे के बाद व्यक्त करें। जब भी गुस्सा आए, तत्काल उस पर विवेक का अंकुश लगाएं और उसे कल पर टाल दें। कम-से-कम आधा-एक घंटे के लिए तो टाल ही दें। अन्यथा हो सकता है गलती किसी और ने की हो और आप सीमा से ज्यादा गुस्सा कर बैठे तो वह गलती का प्रायश्चित करे या न करे पर आपको गुस्से का प्रायश्चित करना पड़ सकता है।

कल की बात है एक बहिन अपने दो बच्चों के साथ फेस्टिबल मेला देखने गयी। एक बच्चा है दस साल का, दूसरा बारह का। छोटे वाले बच्चे ने किसी बात को लेकर मेले में थोड़ी-सी जिद पकड़ ली होगी। मम्मी पहले ही किसी बात को लेकर दिमाग से भारी थी, उसने आवेश में आकर बच्चे को जोर से चांटा मार दिया। बच्चा समझदार था, अतः उसने अपनी जिद छोड़ दी। रात को सोते समय मम्मी को लगा कि बच्चे की सामान्य-सी गलती पर दस लोगों के बीच चांटा मारकर उसने अच्छा नहीं किया और उसने अपने बच्चे से सॉरी कहा। गलती से ज्यादा गुस्सा करने पर सॉरी सामने वाले को नहीं आपको कहनी पड़ेगी। अतः तत्काल गुस्सा करने की बजाय अपनी गलती का अहसास स्वयं बच्चे को होने दें।

क्रोध हमारी समझदारी को बाहर निकाल कर उस पर चिटकनी लगा देता है। जब आप चौबीस घंटे के बाद अपने गुस्से को व्यक्त करेंगे तो वह क्रोध भी होश और बोधपूर्वक होगा। फिर आप जब अपनी बात को व्यक्त भी करेंगे तो विपरीत वातावरण से बचेंगे। क्रोध करो मगर समझपूर्वक।

स्वयं को अनुपस्थित समझें

क्रोध से बचने के लिए दूसरे प्रयोग को भी अपनाया जा सकता है और वह है 'स्वयं को अनुपस्थित समझो।' जब भी विपरीत वातावरण पैदा हो, आप यह सोचें कि अगर मैं यहां नहीं होता तो उन सब बातों का जवाब कौन देता? आपका यह विवेक आपको क्रोध के वातावरण से बचा लेगा। जैसे आप मुझसे मिलकर अपने घर गए। खिड़की से आपने देखा कि आपकी पत्नी और उसका भाई बातचीत कर रहे हैं। आपने सुना कि आपकी पत्नी आपके बारे में ही कई तरह की उल्टी-सीधी बातें कर रही हैं। जैसे मेरे पति हाथखर्चा नहीं देते, मेरा ध्यान नहीं रखते, मेरे लिए उल्टी-सीधी बातें करते हैं और भी पता नहीं बेसिर-पैर की कितनी ही बातें वह कर रही है। स्वाभाविक है कि उस समय आपको गुस्सा आएगा और आप अपने साले को सारी सच्ची बात बताना चाहेंगे। यदि थोड़ा-सा आप सावधान रहें तो आप क्रोध की भट्ठी में गिरने से बच सकते हैं। अगर आप यह सोचें कि यदि मैं आधा घंटा विलम्ब से आता तो उनकी बातों को कौन सुनता और कौन जवाब देता?

प्रयोग करें टेलिग्राम की भाषा

क्रोध-मुक्ति के कई उपाय हैं और जिस समय जो उपाय याद बन पड़े, तत्काल उसे अपना लेना चाहिए क्योंकि इसमें किया गया विलम्ब काफी हानिकारक हो

सकता है। क्रोध-मुक्ति के उपायों में एक और अच्छा-सा उपाय यह है कि टेलिग्राम की भाषा में अपनी बात को व्यक्त करें। अगर आपको लगे कि वातावरण क्रोध का बन गया है और आपके बिना बोले मामला उलझ सकता है अथवा आपको बड़ा तेज गुस्सा आया हुआ है और आप उसे व्यक्त करना ही चाहते हैं तो टेलिग्राम की भाषा में अर्थात सीमित शब्दों में उसे व्यक्त करें। जैसे टेलिग्राम देते समय एक-एक शब्द को तौलकर लिखा जाता है वैसे ही क्रोध के वातावरण में कम शब्दों में बात कहकर चुप हो जायें। इससे वातावरण कलुषित होने से बचेगा। अगर आप क्रोध के समय अपने विवेक को खोकर लगातार कुछ न कुछ बोले जा रहे हैं, तो हो सकता है कि ऐसे अवसर पर आप वह बात भी कह दें जो आपके भविष्य के लिए गलत परिणाम दे सकती है।

याद करें परिणाम

क्रोध-मुक्ति के लिए अगला उपाय है 'परिणाम को याद करो' क्योंकि पहले भी जब कलुषित वातावरण बना था तो आप चीखे-चिल्लाये थे और बात बहुत ज्यादा बिगड़ गई थी। और तो और, आप जिस पत्नी से आजीवन प्रेम निभाने की सोच रहे थे उससे आप तलाक लेने की सोचने लगे हैं। जिस प्रेमिका पर आप अपनी जान न्यौछावर कर रहे थे, उसी पर तेजाब फेंक बैठे। जिससे आप बात करने के लिए तरसते थे, आज उससे बात करने को तैयार नहीं हैं। जिसे घंटों निहारा करते थे आज वह फूटी आंख भी नहीं सुहाता है। हम रोज समाचार-पत्रों में पढ़ते रहते हैं कि गुस्से में किस आदमी ने कितना बड़ा अनर्थ कर दिया? कभी पिता अपने पुत्र पर ही गोली चला देता है तो कभी पुत्र अपने पिता का कत्ल कर देता है। कभी कोई महिला खुद पर ही केरोसिन छिड़क कर आग लगा देती है तो कभी कोई लड़की फांसी पर लटक कर आत्महत्या कर लेती है। पता नहीं, ऐसी कितनी ही घटनाएं रोज़ होती हैं। कभी औरों के घर में, कभी खुद के घर में। अगर व्यक्ति क्रोधजनित परिणामों को याद कर ले तो तनाव भरे माहौल में भी वह अपने आपको बचा सकता है।

अगर आपको गुस्सा आया है तो आप सावधान हो जाइए। आप खड़े हैं तो तत्काल बैठ जायें ताकि उसके बाद गुस्सा केवल जबान से ही व्यक्त होगा। बैठे हैं तो लेट जायें। अगर फिर भी लगता है कि आपका क्रोध शांत नहीं हो रहा है तो झट से फ्रिज खोल कर एक बोतल ठंडा पानी पी लें। आप अनुभव करेंगे कि ऐसा करके आप बड़ी हानि से बच गए हैं।

गुस्सा करें, मगर प्यार से

क्रोध-मुक्ति का एक और उपाय है : 'बोधपूर्वक बोलो और कार्य करो।' अगर आपको लगे कि बिना बोले काम नहीं चलेगा तो आप सावधानी से अपनी बात को व्यक्त करें। सामने वाला भले ही समझे कि आप गुस्सा कर रहे हैं पर आप भीतर से सचेत रहें। आपका गुस्सा किसी भी तरह से कोई नुकसान न कर बैठे। हम कई बार ट्रकों के पीछे लिखी हुई बड़ी अच्छी बातों को पढ़ा करते हैं। एक बात मैंने कई ट्रकों के पीछे पढ़ी है—'देखो मगर प्यार से'। गुस्से के साथ भी उसी को जोड़ लो। गुस्सा भी करो तो प्यार से करो। जैसे ही अन्तर्मन में प्यार उभरेगा तो गुस्सा अपने आप गायब हो जायेगा।

गुस्से से बचने के लिए एक और उपाय किया जा सकता है। किसी अन्य कार्य में लग जायें। लगे, गुस्से में बोलचाल तो बंद हो गई, आप बाहर से नहीं बोल रहे हैं, मगर भीतर से उफान उभर रहा है तो तत्काल एक काम करें—किसी अन्य कार्य से स्वयं को जोड़ दें। थोड़ी देर के लिए किसी आस-पड़ोस के घर में चले जायें अथवा किसी अन्य स्थान या व्यक्ति के पास चले जाये जहां आपकी मनःस्थिति बदल सकती हो। सावधान रहें जब आप गुस्से में हों तो भोजन न करें। इससे मनोवेगों में उत्तेजना आती है और वह भोजन हमारे लिए हानिकारक हो जाता है। थोड़ी देर विश्राम करें फिर शांत मन से भोजन करें। ध्यान रखें, गुस्सा करने के बाद अगर आप भोजन कर रहे हैं, तो भोजन को थोड़ा ज्यादा चबा-चबा कर खायें ताकि आपके क्रोध की ऊर्जा चबाने में खर्च हो जाये और आपका क्रोध शांत हो जाये।

कई बार परिस्थितियों के अनुसार व्यक्ति को निर्णय करना पड़ता है कि कितनी मात्रा में क्रोध किया जाये अथवा न किया जाये। कभी-कभी क्रोध प्रकट करना आवश्यक भी हो जाता है और कभी-कभी बड़ा हानिकारक, पर लम्बे अर्से तक क्रोध को दबाकर रखना भी हानिकारक है। क्योंकि ऐसी स्थिति में क्रोध हमारे मानसिक संतुलन को बिगाड़ देता है।

क्रोध को जीतें क्षमा से

क्षमा और सहनशीलता का विकास करें, यह काफी लाभदायक सूत्र है। किसी के क्रोध का सामना सहनशीलता से करना और मौका पड़ जाये तो शालीनतापूर्वक क्रोध करना हमारे व्यक्तित्व की महानता है। क्षमा तो एक ऐसा मंत्र है जिसे हजारों वर्षों से अपनाया गया है। बड़े-बड़े महापुरुषों ने इसी शस्त्र से आत्म-विजय के संग्राम में सफलता प्राप्त की है। बड़ी से बड़ी विपरीत स्थिति या घटना हो जाने के बावजूद जब व्यक्ति क्षमा भाव से भरा होता है तो विपरीत वातावरण उस पर प्रभाव नहीं डाल सकता। अंग्रेजी का एक बड़ा प्यारा-सा शब्द है—सॉरी-क्षमा कीजिए। मनुष्य जो दिन में पचास बार इस शब्द का प्रयोग करता है विपरीत वातावरण में इसका उपयोग क्यों नहीं करता है। क्षमा से बढ़कर कोई शस्त्र नहीं होता और शांति से बढ़कर कोई शक्ति नहीं होती। हम अपने जीवन में इन दोनों का विकास करें।

अगर आप क्रोधी स्वभाव के हैं तो सप्ताह में क्रोध का एक व्रत अवश्य करें। जैसे हम कई देवी-देवताओं की आराधना के लिए, व्रत करने के लिए अलग-अलग वार का चयन करते हैं, ऐसे ही सप्ताह में एक दिन अपने मन की शांति के लिए एक व्रत करने का चयन करें और व्रत करें क्रोध-मुक्ति का। सुबह उठते ही नियम ले लें कि अब चौबीस घंटों के दौरान कैसा भी विपरीत वातावरण क्यों न बन जाये पर मैं किसी भी स्थिति में गुस्सा नहीं करूंगा। आप अनुभव करेंगे कि इससे आपके अन्तर्मन में एक विशेष प्रकार की शांति अनुभव हो रही है।

जैसे चौबीस घंटे के लिए भोजन का त्याग करना उपवास कहलाता है इसी तरह चौबीस घंटे तक क्रोध का त्याग करना भी उपवास ही है। यह एक अच्छा उपवास है जिससे हम स्वयं को एवं पूरे परिवार को एक दिन के लिए शांति का सुकून प्रदान कर सकते हैं। संभव है कि जिस दिन आपने क्रोध न करने का नियम लिया हुआ है उसी दिन संयोगवश कोई विपरीत टिप्पणी सुनने को मिल जाये तो उसे नजरअंदाज करने की कोशिश करें। हो सकता है हमारी शांति को कोई चुनौती मिले पर उसका सामना करने का पुरुषार्थ दिखाएं। सहनशीलता से एक ओर जहां हमारे जीवन में गंभीरता आएगी वहीं हम आत्मसंयमी बन सकेंगे। सहनशीलता औरों के क्रोध को भी ठण्डा कर देती है।

जो लोग अपने जीवन में क्रोध से छुटकारा पाना चाहते हैं उन्हें प्रतिदिन मौन रखने का भी अभ्यास करना चाहिए। मौन जहां हमारी वाणी को विश्राम देता है वहीं विपरीत वातावरण में हमें तटस्थ रहने का अवसर प्रदान करता है। किसी भी व्यक्ति के लिए चार घंटे तक बोलना सरल होता है पर चार घंटा चुप रहना मुश्किल। विपरीत वातावरण में हमारा मौन हमारे लिए बचाव का काम कर सकता है। ऐसे अवसर पर किसी के चीखने-चिल्लाने पर भी हमारा मौन हमें आत्म विवेक का बोध देता रहता है।

पेट्रोल नहीं : पानी बनें

ये बिन्दु हुए स्वयं के क्रोध से बचने के लिए। कई बार दिक्कत यह खड़ी हो जाती है कि अगर दूसरा हम पर क्रोध कर रहा हो या हमारे साथ गलत व्यवहार कर रहा हो उस समय क्या किया जाये? मैं पहला संकेत देना चाहूंगा कि हर क्रोध का जवाब मुस्कान से दो। संभव है सामने वाला व्यक्ति आग बबुला बन कर आया है। अब यह आप पर निर्भर है कि आप किस रूप में हैं। उदाहरण के तौर पर हम समझ सकते हैं कि हमारे दो हाथों में दो पात्र हैं। एक पात्र में पानी है और एक में पेट्रोल। सामने वाला व्यक्ति दियासलाई जलाकर आपके सामने लाया है अगर आपने पानी का पात्र आगे बढ़ा

दिया तो दियासलाई उसमें गिर कर बुझ जायेगी, पानी-पानी हो जायेगी और अगर भूल से आपने पेट्रोल का पात्र आगे बढ़ा दिया तो वह दियासलाई भयंकर आग का रूप बन जायेगी। यह हम पर निर्भर करता है कि हम पानी हैं या पेट्रोल। डीजल हैं या दूध।

मैंने सुना है एक व्यक्ति बीच बाजार में जलती हुई लकड़ी हाथ में थामें चले जा रहा था। चिल्ला रहा था मैं जाऊंगा और इस जलती हुई लकड़ी से तालाब में आग लगा दूंगा। लोग समझ गए यह गुस्से में है इसलिए ऐसा कह रहा है। पर इसे विवेक नहीं है कि तालाब में आग लगने की बजाय इसकी लकड़ी ही तालाब में जाकर बुझ जायेगी। अगर हम स्वयं को शांत सरोवर बना लेते हैं तो दुनिया का कोई भी अंगारा किसी सरोवर में आग नहीं लगा सकता है।

क्रोध का ज़वाब दें मुस्कान से

कोई हमारे प्रति गलत व्यवहार करे, हमारी उपेक्षा भी करे तो भी हम उसे मजाक में लेने की कोशिश करें। कहीं ऐसा न हो कि हमारे स्वभाव का स्वीच किसी दूसरे के हाथ में हो वह हमें जब चाहे तब शांत भी कर दे और क्रोधित भी कर दे।

एक प्यारे संत हुए हैं—भीखण जी। कहते हैं कि एक बार वे कुछ भक्तों के बीच बैठ कर प्रवचन दे रहे थे। इसी दौरान एक युवक आया और संत के सिर पर ठोले मारने लगा। भक्तों को यह बर्दाश्त न हुआ। उन्होंने युवक को पकड़ लिया और उसकी पिटाई करने लगे। संत ने बीच में हस्तक्षेप करते हुए कहा, 'इसे मारो मत, शायद यह मुझे अपना गुरु बनाने आया है।'

लोगों ने कहा, 'गुरु बनाने का यह कौन-सा तरीका है। चोटी खिंचवा कर तो चेले बनाए जाते हैं पर यह ठोला मार कर गुरु बनाने का कौन-सा तरीका।' संत ने मुस्कराते हुए कहा, 'निश्चित ही यह व्यक्ति मुझे गुरु बनाने आया होगा। अरे, कोई व्यक्ति बाजार में दो रुपये का घड़ा भी खरीदता है तो भी उसे चारों तरफ से ठोक बजा कर देखता है कि घड़े में कोई छेद या दरार तो नहीं है। जब घड़े को भी ठोक-बजा कर खरीदा जाता है तो शायद यह मुझे ठोक-बजा कर देखता हो कि मैं गुरु बनाने लायक हूं कि नहीं।' इसे कहते हैं क्रोध का जवाब मुस्कान से।

जहां तक संभव हो हर किसी व्यक्ति से प्रेम से बोलें, प्रेम से मिलें। आंख कभी लाल मत करें और जीभ से कभी कड़वा मत बोलें। स्वभाव में और भाषा में विनम्रता हो। दुनिया में वे लोग ज्यादा सम्मान पाते हैं जो सरल भी होते हैं और सहज भी। हम जन्म लेते हैं तो जीभ हमें जन्म के साथ मिलती है पर दांत पीछे आते हैं। पर यह प्रकृति का सत्य है कि जीभ अंत तक हमारे साथ रहती है और दांत पहले ही टूट जाते हैं। जो नरम है वह सबको प्रिय होता है और जो कठोर है, वह अपने परिवार का भी प्रिय नहीं हो सकता है। प्रेम चाबी है और क्रोध हथोड़ा। ताले को खोलने के लिए दोनों का ही प्रयोग किया जा सकता है पर याद रखें चाबी से ताला खुलता है और हथोड़े से ताला टूटता है। चाबी से खुला ताला बार-बार काम आता है पर हथोड़े से टूटा ताला अंतिम बार। प्रेम से काम बनते हैं और क्रोध से बिगड़ते हैं।

गुस्से में भरकर एक व्यक्ति ने भीड़ में खड़े एस.पी. के मुंह पर थूक दिया। पास खड़े इंस्पेक्टर ने इसे एस.पी. का भयंकर अपमान समझा। झट से रिवाल्वर निकाली और उसकी छाती पर तान दी। एस.पी. क्षणभर में सहज हुआ उसने मुस्कान ली और इंस्पेक्टर के हाथ से रिवाल्वर लेते हुए कहा, 'तुम्हारे जेब में रूमाल है क्या?'

इंस्पेक्टर से रूमाल लेकर एस.पी. ने अपने चेहरे पर लगा थूक पोंछा और मुस्कुराते हुए कहा, जो काम रूमाल से निपट सकता है उसके लिए रिवाल्वर क्यों चलायी जाये।

जीवन को ही स्वर्ग बनाएं

क्रोध करने का अर्थ है, दूसरों की गलतियों का प्रतिशोध स्वयं से लेना। गलती किसी और ने की और गुस्सा आपने किया। संभव है सामने वाला तो तुम्हारे गुस्से को झेल कर बाहर चला गया पर तुम अपने ही गुस्से में झुलसते रह गए। क्रोध एक अग्नि है। जो इसे

वश में कर लेता है वह इसे बुझाने में समर्थ हो जाता है, और जो इसे वश में नहीं कर पाता वह इसमें जलने के लिए मजबूर हो जाता है। हम अपने क्रोध को वश में करें। अन्यथा एक दिन हम इसके वश में हो जायेंगे। जो महावत अपने हाथी पर अंकुश नहीं रख पाता वह सावधान रहे, वह हाथियों से कभी भी दबोचा जा सकता है। हर समय औरों को डांट-डपट की आदत छोड़ें। औरों की गलतियों को देखने की आदत बंद करें और अपने ही गिरेबां में झांक कर देखने की कोशिश करें कि हम स्वयं कहां खड़े हैं। औरों की ओर एक अंगुली उठाने वाला व्यक्ति क्या अपनी ओर मुड़ रही तीन अंगुलियों पर नजर डालेगा। कोई तीली थोड़े से संघर्ष से इसलिए जल जाती है क्योंकि उसके ऊपर सिर तो होता है पर दिमाग नहीं, पर मनुष्य जिसके पास सिर भी है दिमाग भी, वह भला थोड़े से संघर्ष से दियासलाई की तरह क्यों जल उठता है !

व्यक्ति दो-चार महिने में एक बार घर के अनुशासन और मर्यादाओं को बरकरार रखने के लिए गुस्सा करता है तो वह वाजिब कहा जा सकता है, लेकिन रोज-ब-रोज अपने झूठे अहंकार के पोषण के लिए वह अपने बीवी-बच्चों पर गुस्सा करता है तो ऐसा करके एक आलीशान बंगले में रहने वाले अपने परिवार को नरक बना देता है। मरने के बाद जो स्वर्ग मिला करता है उसे हमने देखा नहीं है और जिस नरक से बचना चाहते हैं हमने उसे भी नहीं देखा है पर सच तो यह है कि हम अपने ही निर्मल स्वभाव से अपने घर को स्वर्ग बनाते हैं और अपने ही उग्र स्वभाव से घर को नरक। प्रेम, शांति, दया, क्षमा, करुणा ये जीवन के स्वर्ग हैं। क्रोध, कषाय, चिंता, तनाव, घुटन, अवसाद, अहंकार ये जीवन के नरक हैं। क्या हम बुद्धिमानी का उपयोग करेंगे और अपने दो कदम स्वर्ग की ओर बढ़ाने की कोशिश करेंगे। उस स्वर्ग की ओर जिसे हम मरने के बाद पाना चाहते हैं, पर उसे जीते-जी पाया जा सकता है। अगर हम ऐसा करते हैं तो स्वर्गीय होने से पहले ही अपने जीवन में स्वर्ग ईजाद कर सकते हैं।

('कैसे सुलझायें मन की उलझन' से साभार)

हारना न कबूल है

रचयिता—प्यारे लाल साहू

कोई नहीं साथ देगा तेरा,
हर कोई अपने आप में मशगूल है।
खुद ही गिरना है, खुद ही उठना है,
जिंदगी का बस यही उसूल है।

जिंदगी एक नदी है,
सुख दुख दो इसके कूल है।
गम भी हैं खुशियां भी हैं।
फूल कम है, ज्यादा शूल हैं।

मनुज गलती का पुतला है,
जाने अनजाने हो जाती भूल है।
कौन हारा कौन जीता,
बहस ये फिजूल है।

आकश छू लेता है कभी,
राहों का जो धूल है।
वक्त से बड़ा न शिक्षक कोई,
जिंदगी सबसे बड़ा स्कूल है।

चट्टान भी हो जाता है चूर,
श्रम ही सफलता का मूल है।
चुनौती चाहे जितनी बड़ी हो,
'प्यारे' हारना न कबूल है।

जवानी ढूँढ़ रहा हूँ

रचयिता—राधाकृष्ण कुशवाहा

लकुटी सहारे झुके, बूढ़े को चलत देख;
यौवन की अकड़ में, एक युवक व्यंग्य बोला।

खोजते हो बाबा क्या? भूला है नीचे क्या?
बूढ़े को याद आया, यौवन हिंडोला।

गई तरुणाई फिर, यौवन बसन्त आया;
नीरस पतझड़ में बढ़ा, हृदय का फफोला।

मीठे में चुटकी ले-''ढूँढ़ता जवानी हूँ'',
वृद्ध उस युवक से, कुछ व्यंग्य में यों बोला।

परमार्थ पथ

सद्‌गुरु ज्ञान ठिकाना है

मन-इंद्रियों से प्रतीत प्रपंच जड़-दृश्य है, जिसमें प्राणी-पदार्थों का प्रवाह है, जो स्थिर नहीं है। पदार्थ निर्जीव हैं। कुछ पदार्थों का जीवन में बरताव है, वह होता रहता है और पदार्थ व्यवहृत होकर लुप्त होते रहते हैं। वैसे प्राणी भी मिलकर, व्यवहार कर खो जाते हैं। कुछ मनुष्य अनुकूल होते हैं और कुछ प्रतिकूल, परंतु कोई स्थिर नहीं है। यह सब जिसको स्वप्नवत दिखता है, वह निर्द्वंद्व होता है। अपना मन आत्मचिंतन में लगाना ठीक है। जो प्रपंचशून्य को देखता है वह अनंत आत्मिक जीवन को देखता है। मन-इंद्रियों से जो कुछ दिखता है, वह प्रपंच है। सुषुप्ति, समाधि और मृत्यु में वह खो जाता है। अतएव प्रपंच मेरे स्वरूप से सर्वथा भिन्न है। विवेकवान प्रपंच को त्यागते हुए सदैव आत्मलीनता में रहते हैं।

* * *

जीवन दुखों से भरा होता है। उसी में बीच-बीच में थोड़ी-थोड़ी भौतिक अनुकूलता में मनुष्य सुख मान लेता है। स्थिर सुख तो तब मिलता है जब मन सब समय निर्मल रहता है। विकार-विहीन अंतःकरण ही अनपायिनी सुख का साधन है। इसी में पूरी निर्भयता है।

* * *

कैसा जीवन है! इसका कुछ भी ठिकाना नहीं है। जिन्हें स्वरूपज्ञान हो गया है, उन्हें चाहिए कि वे सारी सांसारिक इच्छाओं को त्यागकर जीवन का सर्वोच्च काम करें जिससे दुखों का सर्वथा अंत है; वह है स्वरूपस्थिति। सांसारिक लालसाएं ही मन को भटकाती हैं। सारी सांसारिक इच्छाओं को छोड़ देने के बाद मनुष्य अमृत हो जाता है। सांसारिक इच्छाएं भ्रम के कारण ही उत्पन्न होती हैं। परम सुख, अनंत सुख, परमानंद ही तो जीव को इष्ट है, और वह सांसारिक इच्छाओं से लौटकर आत्म-अभिमुख होने में ही घटित होता है।

* * *

किसी बात को लेकर अपना मन उद्वेगित मत करो। बिना उद्वेग किये उन बातों का समाधान हो सकता है। जिसका समाधान नहीं हो सकता है, उससे अपने को बचाकर रखो। दुनियाभर का समाधान करने की हमारी ठेकेदारी नहीं है। अपने मन का समाधान कर लेने पर बाहर सब समाधान हो जाता है। कुछ न चाहना संपूर्ण समाधान है। अंततः हमारे साथ कुछ नहीं रहेगा, तो ऐसे कुछ नहीं को क्या चाहना। प्रश्न आता है कि जब तक देह है तब तक शरीर के लिए कुछ वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है। इसका उत्तर है कि परिश्रम और प्रारब्ध उसके लिए पूर्ण सहारा हैं। चाहने की आवश्यकता नहीं, केवल अपनी श्रेणी का परिश्रम करते रहो शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती रहेगी।

* * *

अब क्या भ्रम रहा और क्या मोह, जब आज-कल में शरीर छोड़कर सदैव के लिए अकेला रह जाना है, तब यहां किस वस्तु में मोह करना है? तुम विदेश में बैठे हो। यह पांचों विषय का विस्तार विदेश है। इस विदेश में तुम्हारा कहीं कुछ और कोई नहीं है। मन सदैव स्वरूपभाव में रम रहा है। देह तो कचड़ा है। फिर अन्य कौन-सी वस्तु स्वर्ण है? आत्मा ही परम दिव्य है, दुखहीन अनंत शांत स्वरूप है। अतएव सदैव आत्मभाव में रहते हुए कालक्षेप करना है। इसके लिए सतत जागरूक रहना है। इन प्राणी, पदार्थों और परिस्थितियों के वन में अपने आप का भाव कभी भूलना नहीं है। स्वस्वरूप-स्मृति ही परम श्रेष्ठ साधना है। आत्मजाग्रत ही आत्मतृप्त होता है।

* * *

तुम्हारा यहां क्या है जिसकी हानि हो जायेगी? याद रखो, तुम्हारा अपना माना हुआ शरीर तुम्हारा नहीं है। यह क्षण-क्षण बदल रहा है और आज-कल में सर्वथा लुप्त हो जायेगा। जब शरीर नहीं रहेगा तब अन्य क्या रहेगा? तुम्हारे साथ के लोग बिगड़ जायेंगे, यह भ्रम क्यों पालते हो। जिनको अपना कल्याण इष्ट होगा, वह क्यों बिगड़ जायेगा? और जो बिगड़ना चाहेगा वह बिगड़ जाये, इसमें तुम्हारी क्या हानि होगी? सब लोग बिगड़ेंगे नहीं। जिनको बिगड़ना है उनको कोई बचा नहीं पायेगा। तुम दूसरे के विषय में सोचकर समय बरबाद न करो। स्वयं हर क्षण निर्मल मन से रहो और दूसरे का हितचिंतन रखो। बस, इतना काफी है।

* * *

ध्यान का अर्थ है अकेला रह जाना? मनोवृत्ति उदय होने से द्वैत उपस्थित होता है। जब सारी मनोवृत्तियां शांत हो गयीं, तब अद्वैत-अकेला-केवल-शेष बचा रह गया। यही यथार्थता है। शरीर छूट जाने पर सबको अंततः अकेला-अद्वैत होना है, किंतु इससे परम शांति नहीं मिलती है, अपितु वह तब मिलती है जब देह में रहकर चित्तवृत्ति शांत कर अद्वैत हो जाये।

* * *

मन के मंसूबे सब धरे रह जाते हैं, बीच में ही काल उठा लेता है। अतएव जो समझता हो, उसे चाहिए कि वह अपने अकेलेपन को समझे। आत्मा अकेला है। उसके साथ कुछ नहीं है। सारा साथ नकली, आरोपित एवं क्षणिक है। वह तो सदैव शुद्ध-बुद्ध और निर्मल है। दुख की थोड़ी गंध भी मेरे में नहीं है। हम अपनी वास्तविकता को न समझकर भटक रहे हैं। जब हम अपने असंग स्वरूप को समझकर सबसे निस्पृह हो जाते हैं, तब कोई दुख नहीं रहता।

* * *

शरीर कारावास है, मल-मांस का पिंड है, रोगों का घर है, उद्वेगों का स्थान है, राग-द्वेष की जगह है और सारे दुख-द्वंद्वों का निधान है। यह अंततः घृणित शव होकर जमीन पर पड़ा रहता है, और स्वजनों को तुरंत इसे जलाना, गाड़ना या फेंकना पड़ता है। इसमें रहने की इच्छा रखना घोर अविवेक है। यह जब तक है तब तक इसकी असारता को समझ कर इससे पूर्ण अनासक्त रहना चाहिए, जिससे अपने आप में स्थिति बनी रहे। आत्मा परमात्मा है, जीव शिव है। अतएव अंतर्मुख होकर रहना अगाध अमृत-सागर में निमज्जन करना है और बहिर्मुख रहना विष के सागर में डूबना है।

* * *

इस जड़-दृश्य में कहीं भी राग है, तो वही तुम्हारा भव-बंधन है। सब तरफ से मन का उठ जाना और निरंतर आत्मचिंतन में लगे रहना जीवन्मुक्ति का पथ है। इस असार संसार में तुम्हें कुछ भी सार मिलने वाला नहीं है। सार है इससे लौटकर अपने आप में सिमिट जाना। स्वस्वरूप एवं आत्मा के वैभव का परिचय करो; वह है कैवल्य, असंगता, आत्मतृप्ति। मन का व्यामोह सर्वथा त्याग किये बिना उक्त स्थिति नहीं मिल सकती। बाहर की पकड़ पूरी छूट जाने पर भीतर प्रवेश होता है। बाहर की पकड़ के मूल में भ्रांति है। आत्मा को बाहर से दुख के अलावा कुछ नहीं मिल सकता। सच्चा सुख आत्मलीनता है, जो स्वतंत्र है।

* * *

जीवन का उच्चतम लक्ष्य है—परमात्मा की प्राप्ति। परमात्मा शब्द दो पदों का जोड़ है, परम और आत्मा। परम का अर्थ है उच्चतम और आत्मा का अर्थ है स्वयं। जब स्वयं उच्चतम स्थिति में हो गया तब यह परमात्मा की प्राप्ति है। उच्चतम स्थिति है मन का पूर्ण निर्मल रहना। अतएव मन की पूर्ण निर्मल दशा परमात्मा की प्राप्ति है। इसके साथ आत्मा का ज्ञान होना चाहिए कि मैं स्वयं देह, प्राण, मन, बुद्धि, अहंकार आदि समस्त जड़ दृश्यों से सर्वथा भिन्न हूं। अपनी असंगता का पूर्ण बोध तथा मन की पूर्ण निर्मलता परमात्मा की प्राप्ति है। वस्तुतः पाना कुछ नहीं है, अपितु मन को पूर्ण निर्मल रखते हुए अपने आप में संतुष्ट रहना है। ❑

नारी : समाज की नायिका

लेखिका—साध्वी सुमेधा

भारतीय समाज में नारी का स्थान सर्वोपरी है। नारी गृहस्थी रूपी गाड़ी की धुरी है जिसके इर्द-गिर्द पूरा मानव समाज घूमता है। नारी यदि संस्कारी है तो वह पूरे परिवार, समाज एवं देश को अच्छे संस्कार देकर सुख और समृद्धि प्रदान करती है। बशर्ते नारी के अंदर शील और मर्यादा का आभूषण हो। नारी के प्रत्येक व्यवहार क्रिया-कलाप-पहनावा-ओढ़ावा का प्रभाव समाज पर पड़ता है। इसलिए नारियों को अपनी गरिमा को समझने की महती आवश्यकता है।

मानव सृष्टि की सिरमौर कलाकृति है नारी। और मानव समाज को आकर्षित करने वाली कलाकृति है नारी। नारी प्रकृति की कोमल और मनमोहक कलाकृति है। प्रकृति ने नारी के अंदर सारी खूबियां, सारी अच्छाइयां भर दी हैं। जैसे दया, क्षमा, करुणा, त्याग, सहनशीलता का भाव, दुर्व्यसनमुक्त जीवन जीने का स्वभाव। बहुत सारे सद्‌गुण प्रकृति ने स्वाभाविक रूप से इसके नेचर (प्रकृति) में भर दिये हैं।

यदि नारी अपनी खूबियों को समझकर इन्हें विकसित करने में लग जाये तो पूरे समाज को सुख-शांति एवं समृद्धि की ओर गति प्रदान करने में पूर्ण सक्षम है। नारी अपने पवित्र आचरण एवं सुन्दर स्वभाव से जन-जन के मन को अपनी ओर आकर्षित कर सकती है। समाज को एक बेहद खुशनुमा माहौल दे सकती है। समाज में नैतिकता और सदाचार का वातावरण स्थापित करने में यदि कोई पूर्ण सक्षम है तो वह है नारी।

कोई भी पुरुष जब नैतिकता या सदाचार से पतित होता है, उसके मन में विकार आता है तो उससे उबरने में सहायक होती है एक नारी। चाहे वह मां हो, बहन हो या बेटी हो या फिर उसकी पत्नी ही क्यों न हो। संत-गुरु जन भी कहा करते हैं विकारी मन को शुद्ध बनाने के लिए स्त्री मात्र को मां, बहन, बेटी के भाव से देखो विकार शांत हो जायेगा।

लोगों की बिगड़ती मनोदशा को देखते हुए मैं पूरी नारी जाति से निवेदन करती हूं कि आप अपनी गरिमा को पहचानिये और समाज की बिगड़ी दशा को सुधारने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान प्रदान कीजिए। इस महान कार्य को सिर्फ और सिर्फ नारी ही कर सकती है।

पुरुष शक्ति का भण्डार होता है, परन्तु जब सही दिशा नहीं मिलती तो वह अपनी शक्ति का सदुपयोग की बजाय दुरुपयोग करता है जिसका खामियाजा पूरे समाज को भुगतना होता है। स्त्री में समझ ज्यादा होती है और पुरुष में शक्ति। जब समझ और शक्ति दोनों मिल जाती हैं तो समाज को उत्थान की ओर गति प्रदान करते हैं।

मैं मानती हूं नीम कड़वा होता है और सर्प का विष मृत्युदायक होता है। पर आप जानते हैं कुशल वैद्य इसी को शोधकर अमृतदायिनी औषधि तैयार कर समाज को लाभ पहुंचाते हैं। ठीक इसी प्रकार नारी यदि कुशल वैद्य बन जाये तो समाज का बहुत बड़ा लाभ हो। समाज में फैला रोग—आतंकवाद, भ्रष्टाचार, बलात्कार, अनैतिकतापूर्ण व्यवहार सभी समाप्त हो जायें। पूरा मानव समाज सुपथ पर आ सकता है। और यह काम एक कुशल समझदार सुसंस्कारी नारी ही कर सकती है। नारी की क्षमता के आगे कानून और धर्म भी बौना सिद्ध होते हैं। धर्म कोमल भाषा का प्रयोग करता है और कानून कठोर दण्ड देता है। परन्तु नारी एक मां होने से गर्भ में ही सावधानीपूर्वक अपने अभिमन्यु को कुवासनाओं के चक्रव्यूह को तोड़ने का हुनर सिखा देती है। चाहे वो मैनावती हो, मदालसा हो, कयाधु हो, सुरुचि हो या अन्य कोई और माता क्यों न हो। समाज को सही गति प्रदान करने में नारी का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है, आज भी है और आगे भी रहेगा। उसके इस कार्य को कोई और नहीं कर सकता।

परन्तु आज बहुत अफसोस के साथ इस बात का जिक्र मुझे करना पड़ रहा है कि आज नारी ने नैतिकता और सदाचार का, शील और मर्यादा का, चरित्र और संस्कारों का जो मजाक उड़ाया है, जो उपहास किया है,

वह बेहद खतरनाक सिद्ध हो रहा है। समाज में चारों ओर हाहाकार मचा हुआ है। दिल को दहला देने वाली घटनाओं का जिम्मेदार कौन है? कहीं न कहीं हमारे संस्कारों में कमी है इस बात को हमें स्वीकारना ही होगा। अपनी जिम्मेदारी से हम अपने पैर पीछे न लें।

मेरा प्रश्न है "लज्जाहीन स्त्री या पुरुष"? आज तक मैंने भी यही सुना था कि स्त्रियां लज्जावान होती हैं। परन्तु आज नारियों के व्यवहार को देखकर नहीं लगता कि आप सचमुच में लज्जावान हैं। यदि हैं तो आपका बेष-भूषा, पहनावा-ओढ़ावा इतना बाजारू क्यों? फैशन के नाम पर पाश्चात्य सभ्यता को अपनाकर भारतीय संस्कृति का जो मजाक आज उड़ाया जा रहा है वह अकथनीय है। सभ्य समाज शर्मशार है, बूढ़े विवश और लाचार हैं, बच्चों के बिगड़े संस्कार हैं इसीलिए समाज में फैला व्यभिचार है।

आज नारियों में लज्जा बहुत कम रह गयी है या समाप्त होती चली जा रही है। नारियों में काफी खुलापन आ गया है। इसलिए उनके पहनावे में, कपड़ों में बेहद कमी आ गई है। ऐसा लगता है कपड़े तन ढकने के लिए नहीं अंगों के प्रदर्शन के लिए पहने जा रहे हैं। इसमें बूढ़े, बच्चे और जवान से लेकर गांव-शहर सब एक हो रहे हैं। फैशन पुरुष समाज भी करता है, पर पुरुषों के कपड़े बढ़ रहे हैं और नारी समाज के कपड़े घटते जा रहे हैं। कुछ कपड़े बाजारू होते हैं और कुछ कपड़ों को हमारी बाजारू सोच छोटे करके सिलवा कर पहनाती है।

यदि अंगों का प्रदर्शन करना ही है तो पर पुरुषों के सामने क्यों? अंगों का प्रदर्शन लोगों को आकर्षित करने के लिए किया जाता है। आप किसे आकर्षित करना चाहती हैं। अपनी जान जोखिम में डालकर लोगों से सहायता की भीख मांगना कहां की समझदारी है।

आधुनिकता की बात उस देश की भाषा है जहां सिर्फ पुरुषों को आकर्षित करने के लिए खुले बदन कम कपड़ों में घूमना जहां का फैशन है। पर पुरुषों को आकर्षित करना भारत की संस्कृति नहीं है। भारत की संस्कृति कहती है यह तो वेश्याओं का काम है। बाजारू औरतों का काम है। यहां तो एक पत्नी को भी धर्म से जोड़ा जाता है। पत्नी को भी धर्मपत्नी का दर्जा दिया जाता है।

कर्दम एक बहुत बड़े ऋषि हुए हैं। नारद जी की सलाह से मनु महाराज अपनी पुत्री देवहूती का रिश्ता लेकर कर्दम के पास गये। कर्दम बोले—देखिये मुझे काम-पत्नी नहीं धर्मपत्नी चाहिए। क्योंकि गृहस्थ या दाम्पत्य जीवन काम विकास के लिए नहीं काम को मर्यादित करने के लिए होता है। और मैं एक सद्पुत्र की प्राप्ति के पश्चात संन्यास धर्म पालन करने की इच्छा रखता हूं। मनु की पुत्री देवहूती सारी बातें सुन रही थी। उन्होंने भी कहा—आप ठीक कहते हैं, स्त्री या पुरुष का सहयोग कल्याणकारी होना चाहिए, कामांध होकर संसार-सागर में डूब मरने के लिए नहीं है। मैं भी संयमी और जितेन्द्रिय पति की कामना करती हूं। मैं भी चाहती हूं मेरा विवाह ऐसे ही योग्य पुरुष से हो जो जितेन्द्रिय और धर्मपरायण हो। दोनों के तपस्वी जीवन के फलस्वरूप कपिल जी महाराज का जन्म हुआ। जो 24 अवतारों में एक माने जाते हैं।

मेरा मानना है यदि नारी मर्यादा विहीन जीवन जीना छोड़ दे तो समाज की दशा सुधर जायेगी। यदि नारियों का सुधार नहीं हुआ तो भटकते समाज का सुधार सम्भव ही नहीं है। यदि समाज की बिगड़ी दशा को सुधारना है तो सर्वप्रथम नारी को संस्कारी-सदाचारी, चरित्रवान, शीलवान एवं मर्यादित होना होगा। इसके बिना संसार की कोई शक्ति समाज की बिगड़ी दशा को सुधारने में सक्षम नहीं हो सकती।

किसी ने दिल को छू लेने वाली पक्तियां लिखी हैं—

होती है आज बात गगन चाँद पार की।
और धज्जियां उड़ने लगी हैं संस्कार की॥
पश्चिम का भवंर चल पड़ा और भूल हो गई।
ठोकर से बदलियां बदल कर धूल हो गयीं॥
साड़ी की सभ्यता तो पानी में आ गई।
इतने गिरे हम कि बहन गाली में आ गई॥
मिलती नहीं दुनिया में सीता की निशानी।
सर पे सवार हो गई शीला की जवानी॥

आंखों में शर्म ना कोई जुबान बची है।
बस जिस्म दिखाने की घमासान मची है॥
लज्जा को त्याग चमेली चिकनी में आ गयी।
साड़ी को फेंक लड़कियां बिकनी में आ गयीं॥

नारी समाज से मेरी एक यही प्रार्थना है कि चरित्र के प्रति, शील और मर्यादा के प्रति आप अटूट निष्ठावान बनें। यही आपके आभूषण और असली सुरक्षाकवच है। आपकी ढाल और तलवार यही सद्‌गुण है। इसी से आप पूरे समाज में गौरव और सम्मान का पात्र बनती हैं। चार दिन के चिकने चेहरे या कृत्रिम ब्यूटीपार्लर से आपकी प्रतिष्ठा में चार चांद नहीं लग सकते।

इसलिए नीम की कड़वाहट को दोष न दें। सर्प के विष को भी दोष न दें, आग की दाहकता को दोष देने की जरूरत बिलकुल नहीं है। बस ठीक इसी प्रकार पुरुष समाज के दोष गिनाने की जरूरत नहीं है। अपने को इससे कैसे बचाकर चलना है या उनकी कड़वाहट, विष या दाहक शक्ति को कैसे समाज के कल्याण में तब्दील करना है यह सोचें। अच्छाई के बारे में सोचना अच्छे लोगों का काम है और बुराई के बारे में सोचना बुरे लोगों का काम है। बिगड़े समाज की मनोदशा को कैसे सुधारा जाये, इस विषय में सोचकर कुछ ऐसा कदम उठाने का प्रयास करें जिससे हम सबका भला हो।

सुख और दुख का कारण हम स्वयं हैं

लेखक—विवेक दास

यह संसार द्वंद्वात्मक है। इस द्वंद्व भरे संसार में द्वंद्व से बच पाना मुश्किल है। यह जीवन ही द्वंद्व से खड़ा हुआ है फिर जीवन में द्वंद्व न आये यह कैसे संभव है। हानि-लाभ, सुख-दुख, मान-अपमान, अनुकूल-प्रतिकूल, अच्छा-बुरा यह तो आने वाला ही है। हां, समझदारी इसमें है कि ऐसे द्वंद्वात्मक स्थिति आने पर हम अपने आपको सहज और निष्पृह रख सकें। बाहर की परिस्थिति को हम बदल नहीं सकते। हमारे लाख चाहने और प्रयास करने के बाद भी द्वंद्व आयेंगे। यदि हम द्वंद्वग्रसित हो जाते हैं तो यह हमारे जीवन की सबसे बड़ी हार है।

किसी ने क्या खूब कहा है—

सावन का मधुमास भी देखोगे तुम,
मरुस्थल की प्यास भी देखोगे तुम।
राम के स्वयंबर में मत झुमो इतना,
कल राम का बनवास भी देखोगे तुम॥

जब परिस्थितियां हमारे वश में नहीं हैं तो क्या परिस्थिति के अनुसार हम सुखी-दुखी होते रहेंगे। फूलते और पचकते रहेंगे। नहीं। हम परिस्थितियों को अपने अनुसार नहीं बना सकते किन्तु अपने मन को सुदृढ़ और परिपक्व बनाकर द्वंद्व मुक्त हो सकते हैं।

चाहे आप लाख अच्छे हों आपकी बुराई करने वाले मिलेंगे। चाहे आप लाख संयमी हों आप पर उंगली उठाने वाले मिल जायेंगे। चाहे आप कितना भी मधु और मीठा क्यों न हो आपको कटु कहने वाले मिल ही जायेंगे। आप कितना ही अच्छा करते हों किन्तु आपके साथ कुछ बुरा करने वाले मिल ही जायेंगे। आप ऐसे संसार के द्वंद्वात्मक स्थिति से बच ही नहीं सकते।

इसीलिए गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है—

अपजश योग की जानकी, मणि चोरी का कान्ह।
तुलसी लोक रिझायबो, करस कातबो नान्ह॥

क्या सीता जी अपयश योग्य थीं? क्या वह अपनी इच्छा से रावण के यहां गयी थीं? किन्तु उनको बदनाम किया गया और अंततः देशनिकाला दिया गया। क्या कृष्ण महाराज ने मणि की चोरी की थी? फिर भी उनको बदनाम किया गया। गोस्वामीजी कहते हैं कि कोई सूत महीन कातना चाहे और जोर से काते यह संभव नहीं है,

ठीक ऐसे ही जगत के लोगों को रिझाना है।

महात्मा बुद्ध ने कहा है कि तुम ऐसी छतरी का निर्माण करो जिससे चाहे कितनी भी बारिश हो तुम पर बूंद न पड़े। हम जगत को नहीं बदल सकते और न ही परिस्थिति को बदल सकते हैं किन्तु हम अपने को बदल सकते हैं, अपने को सम्हाल सकते हैं, मजबूत बना सकते हैं। यह हमारे वश में और अधिकार में है।

गीता में महाराज कृष्ण ने बड़ा ही महत्त्वपूर्ण सूत्र दिया है—

योगस्थः कुरु कर्माणि संङ्गः त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्धयसिद्धयः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥

हे धनंजय! योग में स्थित होकर आसक्ति का त्याग करके कर्म कर। सिद्धि और असिद्धि में, हानि और लाभ में समता रखता चल, क्योंकि समता ही योग कहलाती है।

सिद्धि और असिद्धि, हानि और लाभ, सुख और दुख, मान और अपमान में समता की स्थिति बने, वास्तव में यही साधना है। यही योग है और यही जीवन का फल भी।

जीवन में जो भी घटनाएं घटती हैं, अच्छी या बुरी, अनुकूल या प्रतिकूल आदमी इसके लिए दूसरे को जिम्मेदार ठहराता है। वह अपने जीवन की स्थिति का कारण दूसरे को मानता है। अच्छी और अनुकूल घटना के लिए वह अपने को केन्द्र में भले ही मान ले, किन्तु प्रतिकूल घटनाओं के प्रति तो वह दूसरे को ही जिम्मेदार ठहराता है। पति, पत्नी, भाई, पिता, पुत्र, परिवार, समाज, समय इन सबको वह अपनी दुखद, प्रतिकूल स्थिति के लिए जिम्मेदार मानता है।

आपने यह कहते जरूर सुना होगा कि आदमी चोर बनता नहीं है उसे समाज चोर बनाता है। आदमी हिंसक होता नहीं उसे समाज हिंसक बनाता है। आदमी लोभी-लालची होता नहीं है समाज उसे ऐसा बनाता है। यह बात एक अर्थ में सही भी लगती है कि इसके लिए समाज या लोग जिम्मेदार हैं। कुछ लोगों द्वारा यह भी कहते सुना जाता है यह तो कलयुग है सत्य का जमाना नहीं रहा। आज तो सत्य बोलकर जीया ही नहीं जा सकता वगैरह-वगैरह। लेकिन ठंडे दिमाग से सोचें, क्या यह बिल्कुल सही है। तो फिर एक ही प्रकार की परिस्थिति से गुजरने के बाद भी सभी लोग चोर, हिंसक या लोभी क्यों नहीं हो जाते। यदि समाज और लोग ही कारण हैं तो एक जैसी स्थिति और परिवेश होने पर सब एक जैसे ही होने चाहिए। किन्तु आप खुद समझ सकते हैं कि एक जैसी स्थिति में रहकर एक आदमी हिंसक होता है तो दूसरा अहिंसक हो जाता है। एक चोर होता है तो दूसरा साव हो जाता है। एक लोभी होता है तो दूसरा निर्लोभी हो जाता है। वास्तव में जीवन में जो कुछ भी होता है उसके लिए कोई और नहीं किन्तु हम स्वयं जिम्मेदार होते हैं। यदि इसमें परिवार, समाज और परिस्थिति को मानें तो इनका हिस्सा बहुत ही थोड़ा 10% होता है और हमारा 90% होता है।

जीवन में आज जो कुछ भी हो रहा है हम आज जहां भी हैं उसके जिम्मेदार हम स्वयं हैं। जब तक यह बात हमारी समझ में नहीं आयेगी, तब तक हम न अपना सुधार कर पायेंगे और न ही अपनी उन्नति कर पायेंगे।

हमारे वर्तमान के सोच-विचार और कर्म तथा कुछ हमारे प्रारब्ध कर्म, ये हमारे व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले कारक हैं। अनुकूलता और प्रतिकूलता की स्थिति का आना अलग बात है और उनसे प्रभावित होकर आंदोलित होना बिल्कुल अलग बात है। यदि हमारा मन सशक्त है, हमारे विचार अच्छे हैं तो हम अपने आपको आन्दोलन से बचा सकते हैं। गुरुदेव जी की पंक्ति है—

जीवन नभ में सुख दुख के बादल आते जाते हैं।
है धन्य जीवन उन्हीं का जो मन पर नहीं लाते हैं॥

जब हम किसी वस्तु, प्राणी, पदार्थ और परिस्थिति को अपने सुख-दुख का कारण मानने लगते हैं तो फिर हम गौण हो जाते हैं और प्राणी, पदार्थ और परिस्थिति मुख्य हो जाते हैं। फिर यही हमारे रोने और हंसने के कारण हो जाते हैं। फिर हमारी अपने पर स्ववशता नहीं रह जाती है और हम पदे-पदे द्वंद्वग्रसित होते जाते हैं। और यह एक प्रकार से मानव जीवन की हार है।

यह तो तय है कि कोई भी प्राणी या पदार्थ हमारे सुख के कारण लगते हैं तो कालान्तर में वही दुख के कारण भी हो जायेंगे। क्योंकि उनके परिवर्तन को तो हम रोक नहीं सकते। उनमें परिवर्तन होगा। उनसे बिछुड़ना भी होगा। ज्यादा आगे की बात तो छोड़ ही

दीजिए, हमारा जो अपना माना यह शरीर है इसी को ही हम सुख का साधन मानने लगते हैं तो इसी से दुख भी होने वाला है। यदि इसके प्रति अधिक ममत्व रखकर सुख-भोग का साधन मानेंगे तो भी हम अपने आपको द्वंद्व से नहीं बचा सकते। भय, असंतोष और मानसिक जलन से पीड़ित होते रहेंगे।

निमित्त चाहे बाहर, कितने भी हों यदि हमारे पास दुख का उपादान नहीं है तो बाहर के निमित्त हमें दुख नहीं दे सकते। हम कहीं भी दुखी होते हैं तो यह हमारे मन की कमजोरी है। हमारे मन का पाजीपन है। यदि हमारा मन सशक्त और दृढ़ है तो हमारा मन अप्रभावित रहेगा। चाहे जैसी भी घटनाएं हों परिवार और समाज में हम अपने को द्वंद्वमुक्त रख पायेंगे।

निश्चित ही यदि कोई हमें गाली दे, हमें कोई मारे, कोई हमारी वस्तु छीन ले, तो हमें अच्छा नहीं लगेगा। किसी को भी अच्छा नहीं लग सकता चाहे वह कितना ही बड़ा ज्ञानी और ध्यानी ही क्यों न हो। किन्तु यदि हमारा मन सशक्त और दृढ़ है तो हम ज्यादा विचलित और दुखी नहीं होंगे और जल्दी ही उससे मुक्त हो जायेंगे और यदि मन कमजोर है तो उन अप्रिय घटनाओं से बहुत ज्यादा विचलित और दुखी होंगे और अधिक समय तक द्वंद्वग्रसित बने रहेंगे।

कहा जाता है संत सुकरात गृहस्थ थे। उनकी पत्नी बड़ी ही कर्कशा थी। बात-बात में उनसे झगड़ती रहती थी। एक दिन सुकरात अपने अनुयायियों के बीच कुछ चर्चा कर रहे थे। उनकी पत्नी ने किसी बात पर नाराज होकर घर लीपने वाला गंदा कपड़ा (पोतना) से फेंक कर उन्हें मारा और वह सीधा जाकर उसके मुंह पर लगा। लोग स्तब्ध हो गये, लेकिन सुकरात ने हंसते हुए कहा "गरजने वाले बादल बरसते नहीं हैं; किन्तु आज तो बरस गये।" उनकी पत्नी लज्जित हो गयी और पैर पकड़कर क्षमा मांगी।

इसी संत सुकरात के जीवन की दूसरी घटना है। जब उन्हें राजसत्ता द्वारा जहर का प्याला दिया गया। वे आडंबरों, पाखंडों और अंधविश्वासों का जोरदार खंडन करते थे। वे वहां के युवावर्ग को झकझोर रहे थे। समाज में एक नयी चेतना आ रही थी उससे वहां का पुरोहित वर्ग तिलमिला गया क्योंकि समाज में चेतना आने से उनका गोरखधंधा बंद होने जा रहा था। तो वे वहां के राजा को उकसाकर सुकरात को जहर दिलवाये। जहर का प्याला देने वाला जल्लाद भी रो पड़ा कि मैं ऐसे निर्मल आत्मा को जहर दे रहा हूं। सुकरात तो एक ही घूंट में जहर पी गये और जब तक उनका होश बना रहा, अपने अनुयायियों को उपदेश देते रहे। जब अनुयायी लोग दुखी होकर रोने लगे कि अब हमारे गुरुदेव नहीं रह जायेंगे तो सुकरात कहने लगे— अरे! आज तक तो मैंने जीवन को देखा है लेकिन आज मैं मृत्यु को देखूंगा। क्या पता मृत्यु जीवन से भी अधिक खूबसूरत हो। सुकरात एक ऐसे व्यक्ति हुए हैं जिन्होंने होश की अवस्था में मृत्यु में प्रवेश किया है।

ऐसे ही सरदार भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु हंसते-हंसते फांसी पर झूल गये। उनको न मृत्यु का भय था और न ही दुख था। सरदार भगत सिंह के लिए तो कहा जाता है कि जब उनको फांसी दी गई उस समय लेलिन की साम्यवाद पर पुस्तक पढ़ रहे थे। उन्होंने साथियों से कहा कि मैं इतनी अच्छी पुस्तक पूरा नहीं पढ़ पाऊंगा।

सांसारिक दृष्टि से मृत्यु से बढ़कर अप्रिय और दुखद घटना और क्या हो सकती है किन्तु विवेकवान उसमें भी विचलित और दुखी नहीं होते हैं। सामान्य रूप से अनुकूल और प्रतिकूल घटनाओं का होना तो स्वाभाविक है। वे आयेंगे ही। हम कितना भी प्रयास करें प्रतिकूलताओं से बचने का, किन्तु उनका सामना होगा ही। अनुकूलता है तो प्रतिकूलता भी आयेगी और प्रतिकूलता है तो अनुकूलता भी आयेगी। हमारा मन यदि कमजोर है तो इन परिस्थितियों में डूबता-उतराता रहेगा, फूलता-पचकता रहेगा और जीवन भर हम मानसिक द्वंद्व से ग्रसित बने रहेंगे। किन्तु मन सशक्त और बलवान है तो कैसी भी परिस्थिति आये मन शांत और सहज बना रहेगा। और यदि हम ऐसा कर पायें तो हमारे जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि होगी।

वास्तव में जीवन की सबसे बड़ी अप्रिय घटना है दुखी होना। किन्तु हम इस सुन्दर जीवन को पाकर अपने आपको इस अप्रियता से बचा सकते हैं मन को मजबूत और बलवान बनाकर। इसके लिए सकारात्मक चिंतन और आत्मसंयम की आवश्यकता होगी। इसे हम सेवा, सत्संग और साधना द्वारा प्राप्त कर सकते हैं। ❑

बीजक चिंतन

तुम समर्थ हो, माया-मोह की दीनता छोड़ो

शब्द-100

देखउ लोगा हरि केर सगाई, माय धरि पूत धियऊ संग जाई॥
सासु ननद मिलि अचल चलाई, मँदरिया के गृह बैठी जाई॥
हम बहनोई राम मोर सारा, हमहिं बाप हरि पुत्र हमारा॥
कहहिं कबीर ये हरि के बूता, राम रमेते कुकुरि के पूता॥

शब्दार्थ—हरि= ज्ञानस्वरूप चेतन। सगाई= रिश्ता, नाता, मित्रता। माय= माता, माया। धियऊ= पुत्री, बुद्धि। सासु= संशय। ननद= कुमति। अचल= निश्चल चेतन। मँदरिया= मदारी, बाजीगर, मन। बहनोई= जीजा, वहन करने तथा धारण करने वाला। राम= आत्मतत्त्व। सारा= सत्य। हरि= ज्ञानतत्त्व। हरि के बूता= चेतन की शक्ति, ज्ञानशक्ति। राम= चेतनात्मा। कुकुरि= मुरगी, कुतिया। पूता= पुत्र, बच्चा।

भावार्थ—हे लोगो ! यह मनुष्य जो स्वरूपतः हरि है, ज्ञानस्वरूप है, इसकी भूल तो देखो, यह अपना रिश्ता कहां लगा रहा है, यह कहां मित्रता कर रहा है, इस पर ध्यान दो। जैसे पुत्र माता को पकड़ ले तथा पिता पुत्री के साथ आसक्त हो जाये तो यह अनर्थ है, वैसे जिस माया से जीव के जन्मादि बंधन होते हैं उसी में वह पुनः आसक्त होता है और अपने द्वारा पैदा की हुई बुद्धि को मलिन बना उसके साथ पतित होकर अनर्थ कर रहा है॥ 1 ॥ संशयरूपी सासु तथा कुमतिरूपी ननद मनरूपी बाजीगर के पास जा बैठीं और उन्होंने स्वरूपतः निश्चल चेतन जीव को चंचल बना दिया। अर्थात मन के संशय और कुमति ने जीव को विचलित कर दिया॥ 2 ॥ जैसे मानो ऋष्य शृंग कह रहे हों कि श्री राम की बहिन शांता से मेरा विवाह होने से मैं राम का बहनोई हूं, राम मेरे साले हैं और जिससे राम पैदा हुए हैं वह पुत्रेष्टियज्ञ मेरे द्वारा ही होने से मैं ही मानो राम का पिता हूं और राम मेरे पुत्र हैं; वैसे ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि वस्तुतः हम चेतन ही ज्ञान-विज्ञान के वहन एवं धारण करने वाले हैं और आत्माराम ही हमारा सार-स्वरूप है। हम ही समस्त ज्ञान-विज्ञान के पिता हैं तथा ज्ञान हमारा पुत्र है॥ 3 ॥ कबीर साहेब कहते हैं कि यह सारा ज्ञान-विज्ञान चेतन की शक्ति है। राम तो कुकुरी के बच्चे में भी रम रहा है, फिर मनुष्य की बात तो महान है। वह विवेक-साधनसंपन्न है। वह माया को जीतकर अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो सकता है॥ 4 ॥

व्याख्या—कबीर साहेब अपनी बातें व्यंग्यात्मक ढंग से कहने में बहुत माहिर हैं। वे इस शब्द में पहला व्यंग्य जीव की स्वरूपतः उच्चता तथा दूसरी तरफ उसकी घृणित जगह लगाव को लेकर करते हैं। वे कहते हैं "देखउ लोगा हरि केर सगाई" यह जीव, यह मनुष्य हरि है, परमात्मा है, उच्चतम सत्ता है। जीव का शुद्ध स्वरूप ज्ञानमात्र एवं पूर्णकाम है। पूर्णकाम ही तो हरि है; परंतु यह मूलतः हरि स्वरूप जीव कहां अपनी सगाई करता है, यह कहां-कहां अपने रिश्ते-नाते जोड़ता है उस पर ध्यान देने से "नाम बड़े दर्शन छोटे" कहावत की याद आती है। यह मूलतः महान होते हुए भी मलिन वस्तुओं में रमता है क्योंकि इसे अपने स्वरूप का बोध नहीं है।

"माय धरि पूत धियऊ संग जाई" जन्मदात्री माता से यदि पुत्र वासनात्मक व्यवहार करे और पिता अपनी पुत्री से इस ढंग से पेश आये तो ये महान घृणित कार्य हैं। इससे घृणित और क्या हो सकता है? जीव माया से ही तो देहधारण करता है। यहां माया ही मानो माता है जिससे जीव के जन्मादि चक्कर चलते हैं, परन्तु वह उलटकर पुनः उसी में आसक्त होता है। माया में आसक्त होना मानो माता के साथ दुर्व्यवहार करना है। पिता से पुत्री पैदा होती है। अपनी पुत्री के साथ दुर्व्यवहार कभी क्षम्य नहीं हो सकता। मनुष्य से ही बुद्धि पैदा होती है, इसलिए बुद्धि मनुष्य की मानो पुत्री है और मनुष्य अपनी बुद्धि का ही दुरुपयोग करता है अथवा अपनी बुद्धि को मलिन बनाकर उसके साथ बहता है।

"सासु ननद मिलि अचल चलाई, मदरिया के गृह बैठी जाई।" संसार में यह अधिक देखा जाता है कि सासु और ननद बहू को परेशान करती हैं। साहेब ने इस ग्रन्थ में सासु-ननद को विवाद का पर्याय ही मान लिया है। साहेब-कथित सासु-ननद व्यक्ति नहीं हैं, किन्तु प्रतीकात्मक हैं। वे हैं क्रमशः संशय तथा कुमति। मन है मदारी अर्थात जादूगर। इस जादूगर मन से पैदा हुए संशय और कुमति अचल जीव को चंचल कर दिये हैं। इस मन-मदारी ने संशय और कुमति को भेजकर जीव को भ्रमित कर दिया है। संशय से ग्रसित होने पर जीव स्थिर नहीं हो पाता, इधर कुमति उसको उलटा पाठ पढ़ाकर हितकर को अहितकर तथा अहितकर को हितकर सिद्ध करती है। जीव स्वरूप से अचल है। कल्पना करो, यदि तुम्हारे मन में इच्छा, वासना, संदेह एवं भ्रम न हों तो तुम्हारे चंचल होने का कोई कारण ही नहीं है। जीव स्वभावतः अचल है, शांत है, तृप्त है। वह तो मन के उद्वेग से ही चंचल होता है। इस अचल एवं शांत जीव को मन के संशय एवं कुमति ने विचलित कर दिया है। अतएव जिसे शांति प्रिय हो उसे चाहिए कि वह अपने मन से संदेह एवं कुमति को निकाल दे। शुद्ध बोध से संशय समाप्त हो जाता है तथा निष्कपट सेवा-सत्संग से कुमति समाप्त हो जाती है। मनुष्य को व्यवहार तथा अध्यात्म दोनों में संशय रहता है। व्यावहारिक संशय यह है कि जीवन-निर्वाह कैसे होगा, बुढ़ापा तथा रोग में कौन सहयोग करेगा, ये स्वजन द्वेषी न हो जायें, शत्रु हमारी हानि न कर दें इत्यादि। इस संशय का समाधान इस विवेक में है कि देह के साथ प्रारब्ध है वह अटल है। हस्ती से कीट तक सबका देह-निर्वाह होता है तो हमारा क्यों नहीं होगा ! आदमी पहले से व्यर्थ में चिन्ता करता है, समय आने पर सारी समस्याओं का समाधान हो जाता है। समय सारी समस्यारूपी रोग की औषध है। हम स्वयं विचार से रहें तो हमारा कोई शत्रु नहीं है और यदि हम गलत व्यवहार करने लगेंगे तो हमारी रक्षा कोई नहीं कर सकता। प्रारब्ध, परिश्रम तथा पवित्र कर्मों पर जिसे विश्वास हो जाता है उसके व्यावहारिक संशय नष्ट हो जाते हैं। आध्यात्मिक संशय है कि मेरा स्वरूप क्या है? जड़ है कि चेतन? मैं किसी का अंश या प्रतिबिंब हूं या स्वतः? मेरा आश्रय मैं स्वयं ही हूं कि अलग है? जब शुद्ध विवेक उदय होता है तब यह बोध हो जाता है कि मैं किसी का अंश, प्रतिबिम्ब एवं टुकड़ा नहीं, किंतु स्वयं पूर्णस्वरूप हूं। मेरा आश्रय अलग कहीं नहीं, किन्तु मेरी अपनी आत्मा ही है। मैं जड़ से सर्वथा पृथक शुद्ध चेतन हूं। सारी वासनाओं को छोड़कर मैं स्वयं मुक्तस्वरूप हूं। इस प्रकार जिसे ठीक से निजस्वरूप का बोध हो जाता है उसका आध्यात्मिक संशय नष्ट हो जाता है। दूसरी बात है कुमति। यह संतों-गुरुजनों की सेवा, भक्ति, सरलता, निष्कपटता एवं सत्संग से नष्ट हो जाती है। इस प्रकार संशय और कुमति के नष्ट हो जाने पर जीव परम विश्रांति पाता है।

"हम बहनोई राम मोर सारा, हमहिं बाप हरि पुत्र हमारा।" ऋष्य शृंग की पत्नी शांता थी जो वाल्मीकीय रामायण[1] के दाक्षिणात्य पाठ के अनुसार रोमपाद की पुत्री थी; परन्तु वाल्मीकीय रामायण के गौड़ीय तथा पश्चिमोत्तरीय पाठ के अनुसार राजा दशरथ की पुत्री थी। अधिक प्रसिद्धि यही है कि दशरथ की पुत्री शांता को अंगदेश[2] के राजा रोमपाद ने गोद ले लिया था। कारण यह है कि पीछे के रामायणों तथा पुराणों में ज्यादातर यही लिखा गया कि शांता दशरथ की पुत्री थी। रोमपाद दशरथ के मित्र थे। वे निःसंतान थे, इसलिए दशरथ ने अपनी पुत्री शांता को उन्हें गोद दे दिया था। परन्तु रामायण के दाक्षिणात्य पाठ में स्वयं दशरथ को 'अनपत्य'[3] अर्थात संतानहीन बताया गया है। इस रामायण के अनुसार दशरथ की साढ़े तीन सौ[4] पत्नियां थीं और किसी से संतान नहीं थी। इसका अर्थ है कि दशरथ में ही संतान देने की योग्यता नहीं थी। इसलिए उन्हें 'अनपत्य' कहा गया। दशरथ तथा अंगदेश के राजा रोमपाद से मित्रता[5] थी। दशरथ अधिक प्रसिद्ध होने

. वाल्मीकीय रामायण 1/9/13; 1/11/19।
. पूर्वी बिहार भागलपुर के आस-पास का क्षेत्र अंगदेश कहलाता था।
. वाल्मीकीय रामायण 1/11/5।
. वाल्मीकि दाक्षिणात्य 2/34/13।
. वाल्मीकि दाक्षिणात्य 1/11/3।

से पीछे के रामायणों एवं पुराणों में शांता दशरथ की ही पुत्री बतायी जाने लगी। आज की जनश्रुति यही है कि शांता दशरथ की पुत्री थी जिसे रोमपाद ने गोद लिया था। इतना तो सब कहते हैं कि शांता ऋष्यशृंग की पत्नी बनी।

इस प्रकार अनेक रामायणों और पुराणों तथा जनश्रुति के अनुसार शांता दशरथ की पुत्री होने से श्रीराम की बहिन थी। इसलिए ऋष्यशृंग कह सकते हैं कि मैं राम का बहनोई हूं तथा राम मेरे साले हैं। ऋष्यशृंग के ही द्वारा यज्ञ करने पर रामादि चारों भाई पैदा हुए थे, तो वे मानो राम के पिता हुए और राम उनके पुत्र हुए। यहां इसे प्रतीकात्मक रूप से लिया गया है। यहां का सार अर्थ है कि ज्ञानी कहता है कि मैं ज्ञान-विज्ञान का वहन एवं धारण करने से ज्ञान का बहनोई हूं; ज्ञान की बहिन शांता अर्थात शांति मेरी पत्नी है, ज्ञानी सदैव शांति में रमण करता है। जो ज्ञान का वहन करता है, जो ज्ञान को धारण करता है, वह निश्चित ही शांति में रमण करता है। राम उसका सार होता है। सार कहते हैं मूलतत्त्व एवं सत्य को।

"हमहिं बाप हरि पुत्र हमारा" ज्ञानी कहता है कि मैं पिता हूं और हरि मेरा पुत्र है। यदि हरि का अर्थ आत्मभिन्न ईश्वर माना जाये तो अर्थ होगा कि ज्ञानी कहता है कि मैं ईश्वर का पिता हूं और ईश्वर मेरा पुत्र है। ज्ञानी मनुष्य है और मनुष्य ही ने अपनी कल्पना से ईश्वर को जन्म दिया है। इसलिए ज्ञानी एवं मनुष्य पिता है तथा ईश्वर मनुष्य का पुत्र है। परन्तु यहां हरि का तात्त्विक अर्थ है ज्ञान। ज्ञानी अर्थात जीव पिता है और ज्ञान उसका पुत्र है। जीव ही से ज्ञान पैदा होता है।

"कहहिं कबीर ये हरि के बूता" हरि चेतन है, बूता बल एवं शक्ति है। सद्गुरु कहते हैं कि सारा ज्ञान-विज्ञान चेतन की शक्ति है। हरि के अर्थ चेतन तथा ज्ञान दोनों हैं। वस्तुतः चेतन एवं ज्ञान एक दूसरे से अलग नहीं किये जा सकते। इसलिए हरि का इस शब्द में जहां जिस अर्थ से संगति बैठती है वैसा किया गया है। संसार की सारी विचार-पद्धतियां चेतन एवं ज्ञान के ही बलबूते का फल है। "राम रमेते कुकुरी के पूता।" राम तो कुकुरी के पूत में भी रम रहा है, फिर मानव में तो कहना ही क्या ! वह तो विवेक-साधनसंपन्न भूमिका में है। अतएव मनुष्य को चाहिए कि वह अपने हरिस्वरूप, रामस्वरूप एवं शुद्ध-बुद्ध चेतनस्वरूप को समझे और घृणित माया की सगाई का त्याग करे।

इस शब्द में सद्गुरु ने बताया कि यह जीव, यह मनुष्य स्वयं हरि एवं परमात्मा है। परन्तु इसने मलिन माया से मोह कर लिया है। इसलिए संशय और कुमति से ग्रसित होकर चंचल हो गया है। इसे मनरूपी जादूगर ने नचा डाला है। साहेब मनुष्य को साहस देते हैं कि तुम ज्ञान-विज्ञान के धारक हो, शांति तुम्हारी अभिन्न प्रिया है, तुम्हारा स्वरूप ही राम है, तुम्हीं सारे ज्ञान-विज्ञान के जनक हो, सारा ज्ञानक्षेत्र तुम्हारी शक्ति का चमत्कार है। तुम माया को जीतकर अपने स्वरूप में स्थित हो सकते हो। अपनी शक्ति की याद करो।

मन मोह मूढ़ मत बन

रचयिता—ब्रह्मचारी रामलाल

मन मोह मूढ़ मत बन।
क्या किया क्या कर रहा, भ्रम भूल भरा जीवन।

द्रष्टा दृश्य देख देख ललचात है,
माया में मन मोह मोह पछतात है,
जीवन जोबन जान जाय जबरन।

निर्मोह निर्भय निष्काम नित रहो,
संयम सरल सहज सबका सहो,
प्रेम पियाला पियावत पवित्र मन।

नाना नाच नचावत नचनिया माया,
पाँच पचीस प्रकृति पकावत, काया,
सद्गुरु शरण शीतल शांत होय मन।

जात जात जीवन जवानी जाग जगेला,
अपने अपने अमर आत्मा आप अकेला,
राह राहगीर 'रामलाल' राम है निज धन।

कहानी

गरीब की दौलत

लेखक—श्री रत्न कुमार सांभरिया

प्रेमकृष्ण की अवस्था पचास के नीड़े-गोड़े (लगभग) थी। सांस जैसे हठी रोग ने पिछले एक बरस से उनको ऐसा जकड़ा, नेक लंबे कदम धरते या तनिक परिश्रम करते घबराहट होती और सांस फूल जाती। उनका कसरती बदन, छान पर पड़ी तुरई की भांति दिन-ब-दिन छीजता जाता था। सिर के बाल झड़ गए थे। गाल धंसे-धंसे हो गए थे और हड्डियां उभरी दिखाई देती थीं। गौरवर्ण की आभा वह नहीं रह गई थी, जो आंखें रोकती थीं।

वे प्रायः पांच-पांच, दस-दस दिन के टूर पर रहते। आज छह दिन बाद घर लौटे थके-हारे। प्रेमकृष्ण गेट खोल कर अपना सामान लिए हांफते-खांसते अंदर आ गए थे। सुमती पलंग पर लेटी थी, करवट मारे। आक्रोश से उसकी आंखें गोल हुई जाती थीं और माथे पर पड़ी बलें उसके अंतस की असहजता प्रकट कर रही थीं, वह किसी लक्ष्य को लेकर खफा है। सामान रख कर वे उसके पास पलंग पर बैठ गए थे, चिंता किए। उन्होंने उसका माथा छूकर देखा, ताप बुखार तो नहीं हुआ। क्षुब्ध सुमती ने उनका हाथ झटक दिया और मुंह फेर लिया था।

उनकी नवनिर्मित आलीशान कोठी के पिछवाड़े एक सुनसान प्लाट पड़ा हुआ था। प्लाट मालिक ने वहां छोटी-सी एक कोठरी बना छोड़ी थी। कोठरी से शोरगुल का कर्णकटु माहौल सृजित हो रहा था। उससे यह तय था, अरसे से सूनी पड़ी जीर्ण-शीर्ण उस कोठरी में किराएदार गृहस्थी आ बैठी है।

उन्होंने पूछा—'सुमती' अपने पिछवाड़े होहल्ला हो रहा है?'

सुमती की चबकती रग पर अंगुली रख दी थी, जैसे। उसकी आंखों में रोष की रेख कुछ इस भांति खिंच गई थी, मानो प्रत्यंचा पर तीर चढ़ा हो। प्रेमकृष्ण ने उसकी आंखों में आंखें डालकर फिर पूछा—'लगता है कोई किराएदार आ गया है, कोठरी में?'

सुमती उठ बैठी थी। तीली लगते ही पटाखा सुर्र-सुर्र कर फूटता है। झूंझल झाड़ती वह बिफर पड़ी—'पिछवाड़ा हुआ कि चिड़ियाघर। ना दिन को आंख मींचने देते हैं, ना रात सोने देते हैं। रोना-पीटना, लड़ना-झगड़ना, हूट-हुड़दंग।"

'हें?' प्रेमकृष्ण माजरा बूझ गए थे।

'पति-पत्नी दोनों ऐसे बतलाते हैं, अब भिड़े। मैंने तो आपको फोन इसलिए नहीं किया, खुद कानों सुन लें।'

'कितने दिन हुए?'

'चार दिन।' उसकी भौंहें चढ़ीं और शनैः-शनैः नीचे आईं। प्रेमकृष्ण ने कान लगाकर उधर गौर किया। निःसंदेह बच्चे जोर-जोर से चिल्ला-चिल्ला कर खेल रहे थे। पति-पत्नी दोनों तैश में बतियाए जाते थे। उनकी बतलावण किसी घरेलू विषय को लेकर बहस-मुबाहिस नहीं थी। मुफलिसी से विचलित बोल-तड़ाके थे। उन्होंने अपनी पत्नी की बात को बल दिया—'सचमुच, शोर शराबे के ऐसे विषाक्त वातावरण में कौन सज्जन रह पाए भला।'

प्रेमकृष्ण के अंतस का क्रोध लावा की भांति खदबदाने लगा था। भृकुटियां बंक खा गई थीं। आंखें निकाल कर बोले—'वाह! खूब! बेच दूं अपने घर को! बेच दूं अपने सपने को! बेच दूं अपने अरमान को! बेच दूं जिंदगी भर की खून-पसीने की अपनी कमाई को!

उनकी आंखों में लाल डोरे खिंच गए थे—"सियारों के हुकियाये शेर नहीं भागा करते। समझी।' उनकी सांस उठ गई और खांसी छूटी।

'रहो।' उसने खाट पर थपक मारी और होंठ बिचका कर मुंह मोड़ लिया।

वे सहज हुए—'सुनो सुमती।'

'कहें।' वह अड़ी थी।

'खैर अब तो रात हुई जाती है। सुबह किराएदार और उसके मालिक दोनों से दो टूक बात करूंगा। नहीं माने, तो थाने में रपट लिखवाऊंगा शांति भंग की।' उनका कण्ठ तल्ख था और चेहरे पर शिकन थी। रात्रि ग्यारह-सवा ग्यारह बजे तक कोठरी की ओर से बक-बक-झक-झक, हाथ-पंखा चलने के सर्राटों और धोती के फटकारों की आवाजें आती रहीं।

सुमती सुबह स्कूल चली गई थी, तिक्तता और आक्रोश से प्रेमकृष्ण की ओर तकती अनकही, कही थी।

गुस्से के मारे प्रेमकृष्ण के नकसोर फूल गए थे। वे दांत किटकिटाते, उंगलियां चटकाते, चश्मे के अंदर से देखते, लंबे-लंबे डग भरते, कोठरी की ओर आ गए थे, धड़धड़ाते हुए।

कोठरी! सात-सवा सात फीट दीवारों पर एक ढाल पट्टियां थीं। गर्मी भभके। सर्दी ठिठुरे। बरसात चूवे। पैंतीसेक साल का गुरबा-सा व्यक्ति अपने पैजामे का एक पायजा संगवाए पुरानी-धुरानी खुरदूरी-सी चटाई पर पांव फैलाए अर्द्धनग्न बैठा हुआ था। उसके पैजामे पर लहू के धब्बे थे। वही पैजामा था, जो चोट लगी तब पहने था। वह कोठरी की दीवार की छाया में बैठा टखने के नीचे घाव पर अंगुली से मरहम लगा रहा था। कराहते-कराहते उसके बड़े-बड़े नेत्र रक्तिम हो रहे थे और आंसू भर आए थे। चीसें चलती होंगी। बोदे बदन और दरमियानी कद-काठी के सूखे-से चेहरे के उस आदमी के बालों और खुंटियायी दाढ़ी-मूंछों में धूल-मैल भरे थे। संभवतः उस हादसे के उपरांत वह नहाया-धोया नहीं था। उसने हाथ जोड़ कर प्रेमकृष्ण को नमस्कार किया। कोठरी में महिला स्टोव पर रोटियां सेंक रही थी। संभ्रांत पुरुष को बाहर खड़ा देख उसने हाथ की लोई परात में रख स्टोव मद्धिम कर दिया था। सलवट भरी अपनी सूती साड़ी का पल्लू सिर पर लेती वह देहली पर आ खड़ी हुई थी। उसने आटा सने दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार किया, 'कहें?'

प्रेमकृष्ण ने दम्पति को अपना परिचय दिया। आदमी सहम कर रह गया था। महिला ने सिर का पल्लू माथे तक खींच लिया था। उन्होंने महिला की ओर निगाह भर देखा। गंदुमी वर्ण की मध्यम कद-काठी की गठीली काया वाली उस स्त्री का समूचा शरीर पसीनों की बूंदों से लबरेज था। उसकी भंगिमा देख कर वे आश्वस्त हुए, वह उनके यहां आने का मकसद समझ गई है।

दम्पति की पांचेक साल की लड़की थी और छहेक साल का लड़का था। दोनों भाई-बहन रेत भरे प्रांगण में चार चौकोर के बीच एक लंबी लकीर खींच ठोकर मार-मार फुरचट जैसा कोई गंवई खेल खेल रहे थे। गेहुंआ रंग के मैले-कुचैले से दो नन्हें शरीर पर आधे-अधूरे कपड़े थे, सिर के बाल लटियाए थे। महिला ने बच्चों को पास बुला कर कहा—'कोठी वाली आंटी हैं ना, जो छत पर आ कर तुम्हें बार-बार धमका जाती हैं, उनके पति हैं। पैर छुवो इनके।'

दोनों बच्चों ने उनके चरण कण लिए। उन्होंने दोनों के सिर पर हाथ रखे।

महिला कंठ खखार कर मुखर हुई—'बाबूजी'; मैं खूब जानती हूं, बहिन जी हमसे कितनी नाराज हैं। छत पर आ कर बच्चों को डांटती हैं और हमें खरी-खोटी कह जाती हैं। टोटा है। वक्त की मार गर्दन झुकी है।'

गरीबी के मुखबिर-से बैठे व्यक्ति की ओर उसकी निगाह गई—'बाबूजी'; मेरा आदमी दसवीं फेल है। रिक्शा चलाते पैडल की नोक टखने के नीचे घुस गई। हफ्ता बीता। घर तंगी है। दो घर पोंछा-बर्तन करती हूं। बसर नहीं होता।'

वह कहती गई। वे सुनते गए। गर्मी पाए मोम पिघलता है। दुखिनी की वेदनाभरी बातों से वे पसीजे

और आत्मताप से झुलसने लगे थे, 'गरीबी में आकंठ डूबे यह लोग खस्ताहाल जी रहे हैं। दरिद्रता नासूर है। हम पढ़े-लिखे, नौकरी पेशा खाए-अघाए इन्हीं गरीब-गूरबों से तंग आये हुए हैं।'

प्रेमकृष्ण के लंगोटिया यार देवी प्रसाद यहां से तीसरी गली में रहते हैं। दो मंजिला मकान है उनका। पास में दो पारी में संचालित सीनियर सैकंडरी स्कूल है जिसके वे संचालक हैं।

उन्होंने पूछा—'क्या नाम है आपका?

'धमनी बाई।' उसने झट प्रत्युत्तर दिया।

'वाइफ ऑफ? यानी पति का नाम?'

उसने आदमी की ओर निगाह की। चेहरे पर हल्की सी पुलक उतरी और मुंह फेर गई। गांव में औरत अपने मर्द का नाम जुबान पर नहीं लाती है। उसकी हृदय-कलिका के किसी कोने में गांव की वही कान (मर्यादा) कुण्डली मारे थी।

मर्द ने मलहम सनी उंगली अपने उघाड़े सीने की ओर की—'मेरा बाबूजी?'

'हां।'

'सेवाराम रिक्शावाला।' वह दर्द करते अपने टखने की ओर देखने लग गया था। प्रेमकृष्ण के कदम त्वरा लिए स्कूल की ओर बढ़ गए थे। वे आधे घण्टे बाद खुशी से लकदक लौटे। यह देखकर उनका मन करुणा से विगलित हुआ, समूचे परिवार ने कांसा की एक ही थाली में भोजन किया है। उन्होंने पति-पत्नी दोनों से रू-ब-रू होते हुए कहा—'सुनो।'

दोनों ने समवेत स्वर में 'हूं' कही।

'यहां से तीसरी गली में बड़ा-सा सीनियर सैकेण्डरी स्कूल है, एक। उसके संचालक देवी प्रसाद मेरे लंगोटिया यार हैं। उनके स्कूल में दूसरी पारी के लिए घंटी बजाने व चाय-पानी पकड़ाने के लिए एक बाई चाहिए। वे चार हजार रुपए महीना देंगे।'

'हें!' विस्मयानंद से धमनी का मुंह खुला का खुला रह गया था। सेवाराम ने उम्मीद भरी आंखों से उनकी ओर लखा, लखता रहा।

'हां, बात पुख्ता कर आया हूं, मैं। दोनों बच्चों की फीस माफ रहेगी। किताबें और ड्रेस की व्यवस्था आप लोगों को करनी है।'

सुमती दोपहर दो बजे लौटी। उसका ध्यान पिछवाड़े की ओर ही केन्द्रित रहता था, सो ज्यादा परेशान थी और दिमाग में तनाव बना हुआ था। उधर से हुआ सुई का खुड़का भी उसे खटका लगता था। वह पर्स हाथ में लिए सीधी शयन कक्ष में गई। उसे न चिल्ल पों की आवाजें सुनाई दीं, न उठता शोरगुल। वह सीधी छत पर गई और बालकनी से उधर की ओर झांक कर देखा। कोठरी को ताला लटका था। वह नीचे आकर सोफे पर बैठ गई और सुखद सांस ली—'वाह खूब किया आपने, नपूतों से कोठरी खाली करवा दी। जीना मुहाल था, अपना।'

प्रेमकृष्ण पुलक कर रह गए थे। सुमती पलंग पर लेटी कि घोड़ा बेचकर ऐसी उसकी नींद उघड़ी उधर से ए फॉर एपल। ए फॉर एपल। बी फॉर बाल। बी फॉर बाल। सी फॉर कैट। सी फॉर कैट। डी फॉर डॉग। डी फॉर डॉग। आवाजें सुन कर। कोठरी का दसवीं फेल किराएदार अपने दोनों बच्चों को मनोयोग से ए, बी, सी, डी सिखा रहा था।

उसने प्रेमकृष्ण की ओर सूझती दृष्टि डाली—'अच्छा हुआ उस आफत से पीछा छूटा। नया किराएदार आ गया है, कोठरी में। समझदार है, अपने बच्चों को पढ़ा रहा है।'

प्रेमकृष्ण हंस कर रह गए थे।

कोठरी की आवासिनी गृहस्थी के पास फटी-पुरानी खुरदरी सी एक दरी थी, चौकोर। पूरा परिवार रात उसी पर सोता। उनके दोनों बच्चे देर रात तक शोर मचा-मचा आसमान सिर पर उठाए रहते। घर में आई किताब का सान्निध्य या प्रेमकृष्ण के एहसान से उपकृत मां की डांट डपट का असर। आज वे दोनों भाई-बहन अपनी-अपनी बांह का तकिया लगाए निद्रा के आगोश में समा गए थे। सेवाराम को भी नींद आ गई थी और खर्राटे लेने लगा था।

रात एक बजा था। नीले नभ में तारे ऐसे खिल रहे थे, मानो मटमैली चादर पर भूंगड़े बिखरे हों। अंबर सो रहा था। अवनि सो रही थी। शुक्ल-पक्ष की चौदस का चांद खिला था। विभावरी पर नीरवता का साम्राज्य था। पिन का खुड़का सन्नाटे को चीरता था।

धमनी चुपचाप उठ बैठी थी। उसने निधड़क सोए अपने पति के कान की लोर मुर्की समेत अपनी हथेली पर रख ली। वह उसे सहज-सहज चौड़ा करने लगी थी। कान को छुड़ाता हुआ सेवाराम चौकन्ना हुआ उठ बैठा था—'चोर-चोर।'

'चोर।' चांद के चांदणे में मर्द-बीर दोनों ने एक दूसरे की ओर अविश्वास से निरखा। पलकें झुक गई थीं उनकी। पत्नी की अपराधबोध से, पति की क्षमाभाव से। दोनों हाथों की अंगुलियों की चिमटी बनाकर उसने चौड़ाई और खींच कर निकाल ली थी। मुर्कियां बचपन में मां-बाप ने पहनाई थीं। एक मुर्की पहले ही फाका का शिकार हो गई थी। उसने वह मुर्की अपनी हथेली पर रखी और मां-बाप का स्मरण कर मन मजबूत करते धमनी की ओर बढ़ा दी—'मैं तो कल सुबह खुद खोल कर तुझे संभला देता बच्चों की किताबें और ड्रेस लानी हैं।'

धमनी कांपते कंठ कहने लगी—'बेचूंगी नहीं। रेहन रखूंगी। बच्चों की किताबें और ड्रेस लेनी हैं, स्कूल से। एक किताब दी है, नामचारा। पंखा लाएंगे एक। मच्छर काटते हैं। गर्मी झुलसती है। बच्चे पढ़ नहीं पाएंगे।'

प्रेमकृष्ण सुबह भ्रमण से लौटे। सुमती ने दुछत्ती पर पड़े अटाले में से टेबलफैन निकाल कर नीचे रख लिया था। वह कपड़े से फटकारे मार-मार कर गर्द झाड़ रही थी, उसकी। उन्होंने जिज्ञासावश उससे कहा—'हमारे कमरों में ए-सी लगे हैं। रसोई तक में पंखा लगा है। टेबलफैन का क्या करोगी?'

सुमती हाथ में पंखा लटकाए बाहर जाती हुई बोली—'पिछवाड़े कोठरी में दे आती हूं। ऐसी उबलती गर्मी में बच्चे कैसे पढ़ पाएंगे?'

कोठरी की ओर जाती हुई अपनी पत्नी को वे निहारते रहे, मानो कोई हिमशिला पिघल कर सूखे खेतों की ओर जा रही थी।

सुमती अपना-सा मुंह लिए लौट आई थी। उसके कंधे पर पंखा था। उसने गुस्सा भरे हाथों पंखे को फर्श पर पटका और कुर्सी पर बैठ गई। दांत किटकिटा कर बोली—'त्रिया हठ है। जेवड़ी जल गई, बल बराबर है।'

'क्या हुआ?' तंज कसी आंखों प्रेमकृष्ण ने उसकी ओर देखा,

'उस कोठरी वाली की आंखों में दुत्कार थी। फटकार थी। प्रतिकार था। उलाहना थी।'

'फिर भी?'

'उसने हाथ हिलाया व मुंह से 'ना' कह दी। पीठ मोड़ते ही वह तुनकी—'ले आएंगे, आज।'

प्रेमकृष्ण ने फूलती सांस छोड़ी—'सुमती! स्वाभिमान गरीब की सबसे बड़ी दौलत होती है। भूखों मर कर भी वह उसे खोना नहीं चाहता।' सुमती ना हां कह पा रही थी, ना, ना। गर्दन नीचे किए रही, कठपुतली-सी।

(राजस्थान पत्रिका, 20 मई, 2018 से साभार)

बेटी

रचयिता—श्रीमती तुलसी साहू

मां की कोख से बेटी बोली, करके करुण पुकार।
मां की ममता बिलख उठी, और बाप भरे हुंकार॥

उड़ रही है कानून की धज्जी, न्याय व्यवस्था लज्जित है।
माताओं को अपनी कोख की, क्या रक्षा करना वर्जित है॥

क्यों करना चाहते हो हत्या, हमारा क्या कसूर है।
हमें भी जीने का हक है, यह दुनिया का दस्तूर है॥

बेटी पैदा न होगी तो, बेटा कहां से पायेंगे।
सास, बहू और पत्नी के, रिश्तों को कौन निभायेंगे॥

यह है कुदरत का करिश्मा, और विधि का विधान है।
मेल रहे बेटी बेटा का, यह सृष्टि का वरदान है॥

प्रवचन

आध्यात्मिक उन्नति कैसे हो?

(परम पूज्यवर गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी द्वारा दिनांक 24-08-2004 को कबीर संस्थान, नवापारा-राजिम, रायपुर में ध्यान शिविर के अवसर पर दिया गया प्रवचन। प्रस्तुति—श्री रामकेश्वर जी)

पूजनीय संत समाज, सज्जनो तथा देवियो! आध्यात्मिक उन्नति क्या है और यह कैसे हो। आज इसी पर कुछ चर्चा की जायेगी। आध्यात्मिक उन्नति के लिए पहले आत्मा को समझना बहुत जरूरी है। आध्यात्मिक का अर्थ होता है आत्मा सम्बन्धी। अधि + आत्मिक=आध्यात्मिक। अधि कहते हैं आधार को और आत्मिक अर्थात आत्मा। आत्मा जिसका आधार हो वह है आध्यात्मिक। शरीर, इन्द्रिय और मन का आधार आत्मा है इसलिए शरीर, इन्द्रिय और मन आध्यात्मिक या आत्मा सम्बन्धी कहलाते हैं।

आध्यात्मिक कल्याण यानी आत्मा सम्बन्धी कल्याण के लिए आत्मा को समझना जरूरी है। आत्मा का अर्थ होता है अपना, अपना आपा, जिसका सादा शब्द 'जीव' है। जीव अर्थात चेतन तत्त्व।

जीव के दो अर्थ हैं। एक देहधारी जीव और दूसरा शुद्ध चेतन तत्त्व। जब बत्ती जलती है तब बहुत कीड़े आ जाते हैं तब लोग कहते हैं कि बहुत जीव आ गये। वहां जीव का अर्थ है देहधारी किंतु शुद्ध आध्यात्मिक दृष्टि से जीव का अर्थ होता है शुद्ध चेतन तत्त्व। जीव बुनियादी शब्द है। जीवात्मा, आत्मा, अपना स्वरूप ये आध्यात्मिक हैं।

सबसे जरूरी है अपने को समझना, लेकिन यह मामूली नहीं है। अपने को समझते-समझते भी लोग समझ नहीं पाते हैं। इसमें कारण है कि अपने से दूर की चीजें तो दिखाई देती हैं लेकिन अपने पास की चीजें दिखाई नहीं देती हैं। आंख से हम बड़े-बड़े पर्वतों को ही नहीं चांद-सूरज को भी देखते हैं जो करोड़ों किलोमीटर दूर हैं लेकिन आंख के पास लगी हुई भौं को हम नहीं देख पाते हैं। पलकों के बिलकुल आगे जो बाल लगे हैं जिनको बरौनी कहा जाता है उनको हम नहीं देख पाते हैं। आंख में लगे हुए कज्जल को हम नहीं देख पाते हैं लेकिन संसार को देखते हैं। तो जो अति निकट की वस्तु होती है वह दुर्विज्ञेय होती है। दुर्विज्ञेय का मतलब है बहुत कठिनता से जानने में आनेवाला। और आत्मा तो दूर क्या वह स्वयं ही है इसलिए स्वयं को समझना और बड़ा मुश्किल है क्योंकि यह स्वयं देहबुद्धि में समर्पित हो गया है। वह अपने को देह माने है। देहबुद्धि से दृष्टि बाहर हो गयी है इसलिए अपने को वह समझ नहीं पाता है।

देहबुद्धि का अहंकार ऐसा होता है कि आत्मा को समझने नहीं देता। मुझे एक बार की घटना याद है। मैं भरदा और भैंसमूड़ी क्षेत्र में था। एक लड़का सर्विस में आया था। वह बाईस वर्ष का जवान था। मेरी बातें वह सुने तो सब बातें तो उसे बढ़िया लगे लेकिन यह आत्मा की बात और संसार दुखरूप है यह बात उसकी समझ में न आयें। वह कहे कि महाराज, संसार में तो सब सुख ही सुख है फिर आप कैसे कहते हैं कि यह दुखरूप है। लेकिन वही जब चालीस वर्ष के बाद एकाएक एक जगह मिला तो मैंने देखा कि उसका शरीर काफी विकृत हो चला था। वह मोटर साइकिल से जा रहा था और मैं शाम को घूम रहा था। मुझे देखकर वह उतर पड़ा और नमस्कार किया। उसने अपना नाम बताया और कहा कि महाराज मैं वही हूं। आप जो कहते हैं ठीक कहते हैं। अब बात समझ में आती है कि संसार घोर दुखमय है।

एक बार मैं एक बड़े नगर में गया था और वहां सवा महीने निवास किया था। जिनके यहां गया था उनके एक खास सम्बन्धी थे। दुनिया की दृष्टि से जिनको बड़े लोग कहते हैं वैसे ही वे लोग थे। उन्होंने उनसे मेरे बारे में बताया और कहा कि साहेब आये हैं आओ, जरा मिल लो।

उनके सम्बन्धी ने कहा कि भाई, मुझे बहस अच्छी नहीं लगती। तब उन्होंने कहा कि बहस के लिए थोड़े बुलाता हूं, ज्ञान के लिए बुलाता हूं। तब सम्बन्धी ने कहा कि यार! कर न मिले तो ज्ञान की बात सुनकर क्या होगा। उसके चार महीने के बाद उनकी पत्नी मर गयी। पत्नी उनको बड़ी प्रिय थी। बड़ा खर्च किया गया लेकिन बची नहीं, मर गयी। तब वे स्टेशन पर ही मिलने आ गये और लोगों से कहे कि महाराज जो कहते हैं वह पूरा का पूरा सच है।

यह जवानी, प्रौढ़ता, अनुकूलता, रुपया-पैसा, बाल-बच्चे, धन-दौलत, मान-बड़ाई, पद-प्रतिष्ठा यह सब ऐसा भुलावन वन है कि आत्मा को समझने नहीं देता। जब कुल ढील हो जाता है, कुल बिखर जाता है तब लगता है कि सब झूठ है। और कितने लोग तो बूढ़े हो जाते हैं तब भी नहीं समझ पाते हैं कि सब कुछ झूठ है। भौतिक पदार्थों के सम्बन्ध का ऐसा प्रमाद होता है कि "जानत हू नहिं जानेउ" की दशा होती है। जानते हुए भी नहीं जान पाता है।

तम्बाकू खानेवाला आदमी सोचता है कि भला तम्बाकू से हटकर भी जीवन हो सकता है। तम्बाकू के सहित रहना ही असली जीवन है। अविवेकी लोग सोचते हैं कि दुनिया में सबसे बड़ा सुख है—मैथुन। ऐसे बुद्धिहीन लोग कहते हैं कि क्या कामभोग से भी हटकर रहा जा सकता है? लेकिन अविद्या वृत्ति में ही ऐसा आभास होता है कि क्या मैथुन क्रिया को छोड़कर भी रहा जा सकता है!

जब तम्बाकू जैसी तुच्छ चीज को मान लिया जाता है कि उसके बिना कैसे रहा जा सकता है तब और की क्या कहा जाये। जहां-जहां मन लगा लिया जाता है वही-वही जीवन लगता है। यह द्रष्टा और दृश्य का विवेक करना बहुत जरूरी है। आप द्रष्टा हैं और जो कुछ पांचों विषय है वह दृश्य है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध ये पांच विषय हैं। छठां विषय कुछ नहीं है। पांचों को जानने के लिए पांच साधन हैं। रूप को जानने के लिए आंखें हैं। शब्द को जानने के लिए दो कान हैं। गंध को जानने के लिए नाक के दो छेद हैं। स्पर्श को जानने के लिए चाम है और रस को जानने के लिए जिह्वा है। जिह्वा में दो इन्द्रियां हैं—एक वाक् और एक रसन। एक ज्ञानेन्द्रिय है और एक कर्मेन्द्रिय। जीभ से जब हम रस ग्रहण करते हैं तब वह ज्ञानेन्द्रिय है और जब वाणी बोलते हैं तब वही कर्मेन्द्रिय है। इसप्रकार जीभ ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय दोनों है।

आंख, नाक, कान, जीभ और चाम इन पांच साधनों के द्वारा हम बाहर की चीजों को जानते हैं और जान-जानकर उन्हीं में अपने को खोये रहते हैं। जान-जानकर उसी में हम चिपके रहते हैं। उसमें हम चैन तो नहीं पाते हैं क्योंकि चित्त चंचल रहता है। उसमें विश्राम नहीं मिलता है। कामी आदमी का मन सदैव कुतर्कों में पड़ा रहता है। वह सोचता रहता है कि अभी सुख नहीं मिला-अभी सुख नहीं मिला-उसको संतुष्टि नहीं मिलती है।

कामी आदमी को कभी तृप्ति नहीं होती है। झोपड़ीवाले, महलवाले किसी को तृप्ति होती ही नहीं है। स्वाद की इच्छा रखनेवाले को खाने में कभी संतोष नहीं मिलता। उसको सब समय लगता है कि बढ़िया भोजन नहीं बना। कभी-कभार मन के थोड़ा अनुकूल हो जाता है लेकिन फिर उसको खटकता रहता है।

रूप देखते-देखते रूप के रसिक की आंखें बैठ जाती हैं। आदमी बूढ़ा हो जाता है, आंख से कीचड़ बहता है लेकिन रूप के विषय में उसको संतोष नहीं होता है। यह इंसान भोगों की धारा में पड़कर कब तृप्त हुआ है, कभी नहीं हुआ है। लेकिन सड़न ऐसी है, आसक्ति ऐसी है कि उसी में दुख भोगते हैं और वही जीवन लगता है।

द्रष्टा-दृश्य का विवेक अध्यात्म के लिए पहली सीढ़ी है और आखीर तक वही है। द्रष्टा-दृश्य विवेक का मतलब है आत्मा-अनात्मा का विवेक। आप देह नहीं हैं आत्मा हैं, चेतन हैं। अब यह बात समझना ही बड़ा मुश्किल है। बुद्धि से थोड़ा समझे तो समझ जाये लेकिन जबतक रहनी नहीं होगी तबतक उसका साक्षात्कार नहीं होगा। जिसको इंगलिश भाषा में "रियलाइजेशन" कहते हैं। जबतक अभ्यास नहीं होगा

तबतक दिव्य दृष्टि बिलकुल न होगी। दिव्य दृष्टि का मतलब कोई जादुई दृष्टि नहीं है, किन्तु द्रष्टा-दृश्य, आत्मा-अनात्मा का विवेक है।

शराबी आदमी शराब से अलग रहना जीवन नहीं समझता है। जब वह किसी की बात मानकर शराब को छोड़ दे फिर उसकी तरफ उसकी जो आदत बनी है उसकी कठिनाई को सहे और आदत को मिटाये। कुछ दिनों में शराब की आदत जब मिट जाये फिर शराब कभी न पीये और शराब की चाहना भी न चले और धीरे-धीरे शराब से घृणा हो जाये। यहां तक कि शराब की गंध भी उसको पसन्द न हो। मन, वाणी और कर्म से उसकी शराब बिलकुल छूट जाये तब उसको पता लगेगा कि शराब से अलग रहने में जो सुख है शराब में तो उसका एक अंश भी नहीं है।

उपनिषदों में दो जगह इसकी चर्चा आयी है। मैंने उपनिषद् सौरभ में इसको लिखा है। एक नवयुवक है। वह हृष्ट-पुष्ट है, सुन्दर है तथा सबल अंगोंवाला है और दुनिया का सारा भोग उसी के लिए है तो यह एक मानुष भोग है। वैसा सौ मानुष भोग जमा करो तो एक पितर का सुख है। सौ पितर का सुख इकट्ठा करो तो एक देव का सुख है। सौ देव का सुख इकट्ठा करो तो एक इन्द्र का सुख है। सौ इन्द्र का सुख इकट्ठा करो तो एक प्रजापति का सुख है लेकिन यह सब सुख आत्मस्थिति के सामने एक कण भी नहीं है। यहां इसको मैंने संक्षेप में बता दिया लेकिन वहां इसको और लम्बा करके बताया गया है।

उपनिषद् की इस बात की समीक्षा में मैंने लिखा है कि यह सब कहने का अर्थ यही है कि मनुष्य मानता है कि मेरा शरीर बलवान होता, सुन्दर होता, खूब लम्बा-चौड़ा होता और यह बहुत दिनों तक रहता और दुनिया के सारे भोग इसी के लिए रहते तब हम सुखी होते। लेकिन यह मानसिक पागलपन है। आदमी सोचता है कि मैं इन्द्र हो जाता, प्रजापति हो जाता और स्वर्ग के दिव्य भोगों को भोगता फिर क्या पूछना! यह सब है तो झूठ लेकिन लिखा है। उपनिषद् के ऋषि यह बताना चाहते हैं कि दुनिया के सब सुख को एक तरफ रखो, यहां तक कि सौ इन्द्रों का सुख ही नहीं सौ प्रजापतियों का सुख एक तरफ रखो और आत्मज्ञान और आत्मसंतोष का जो सुख है उसको एक तरफ रखो तो आत्मज्ञान, आत्मसंतोष और निष्काम दशा के सुख के सामने सारे भोगों का वह सुख एक कण भी नहीं है। ऐसी बातें अपने-अपने ढंग से बुद्ध वचन में भी हैं, कबीर वचन में भी हैं। उस दशा में जो पहुंचे हैं वे ही उसको समझ सकते हैं।

जिसमें चित्त स्थिर न रहे वह कौन-सा सुख है। क्या मैथुन-भोग में चित्त स्थिर होता है? दुनियादारी लोग जब मैथुन क्रिया कर रहे होते हैं उस समय मानो उनको सुख मालूम पड़ता है। वह सुख तो उनके चित्त की स्थिरता का होता है लेकिन मैथुन करनेवाले लोग मानते हैं कि वह सुख विषयों में है। वह सुख विषयों में नहीं है क्योंकि क्षण भर के बाद ही बिलबिलाना होता है। मलिनता, क्षीणता, पश्चाताप, घृणा और चित्त तृष्णा से भरा बारम्बार उसी तरफ खिंचने लगा तो सुख कहां हुआ।

सुख है तब जब चित्त न चले, स्थिर हो जाये। सुख तब है जब चित्त में गहरी शांति आ जाये। विषयों में जो शांति आती हुई लगती है वह क्षणिक है और वह शांति नहीं किंतु अशांति का वेग भरने का साधन है। जैसे एक आदमी है, वह दौड़ रहा है। दौड़ते-दौड़ते वह थक गया तब एक जगह रुक गया। वह रुका है तो रुकने के लिए नहीं रुका है किंतु दौड़ने के लिए वेग भर रहा है। वह जैसे थोड़ा सम्हल जाता है वैसे वह फिर दौड़ता है। इसलिए वह रुकना नहीं है। रुकना तब है जब रुक जाये फिर न दौड़े।

विषयों में क्षणकाल के लिए चित्त जो स्थिर होता है, वह स्थिर क्या होता है आगे चंचलता के लिए शक्ति भरता है और उसके बाद उसी का अध्यास उसको खींचता है और जीवनभर उसे भटकाता रहता है। चाहे मैथुन का सुख मानो चाहे स्वाद का, चाहे सम्मान का सुख मानो चाहे बाहर से जहां तक मिलनेवाली चीजों से सुख मानो, जितना सुख मानोगे उतना चित्त चंचल होगा। उतना ही आप भयभीत

होओगे, उतना अंदर से संतापित होओगे और स्थिरता नहीं मिलेगी।

द्रष्टा और दृश्य के विवेक को सामने रखो। मन के परदे पर हम संसार को देखते हैं। मन और आत्मा एक नहीं है, दो है। इसको पतंजलि महाराज ने बुद्धिवृत्ति और पुरुष कहकर व्यक्त किया है। यह चेतन पुरुष देह में विराजमान है और बुद्धिवृत्ति उससे अलग है। सरल ढंग से हम उसको कहते हैं मन और आत्मा। मन के परदे पर दुनिया दिखाई देती है।

हम जब सो जाते हैं तब मन का परदा खो जाता है और तब दुनिया खो जाती है। तब अपने माने गये शरीर का हमें पता नहीं रहता लेकिन जैसे ही नींद खुलती है शरीर और संसार का ज्ञान होने लगता है। अभी यह सब दिखाई देता है जागने पर लेकिन अभी सो जायें तो सब गायब हो जायेगा। समाधि में भी पहुंच जायें और संकल्प शांत हो जायें तो सब गायब हो जायेगा। मन के परदे पर संसार प्रतिबिम्बित होता है और मन अपना स्वरूप नहीं है। मन आत्मा से अलग है। मन मैं नहीं हूं। जो सोचने में आता है वह मैं नहीं हूं। सोच-सोचकर मैं परेशान हूं। सद्गुरु विशाल साहेब ने कहा है—

जानि जनाय देखे सुने, सब मित्रन दिल हाल।
हानि लाभ इसमें कहां, जो तेहि हेतु बेहाल॥

मित्रों से मिलें, उन्हें देखें और उन्हें अपने को दिखायें, उनसे बातें करें, उनकी बात सुनें और उनको अपनी बात बतावें। साहेब कहते हैं इसमें क्यों परेशान हो। यह न करो तो क्या नुकसान होगा। क्यों खलबली में हो।

परकाश रूप स्पर्श रस, शब्द गंध बेकाम।
हर्ष शोक जाने खटक, बिन जाने निज धाम॥

सूरज, चांद, तारों और बिजली का प्रकाश, स्पर्श, रस, रूप, गंध इनको साहेब कहते हैं कि बेकाम और निरर्थक हैं। "हर्ष शोक जाने खटक" इनको जानकर हर्ष-शोक की खटक होती है। "बिन जाने निज धाम" और बिना जाने साधक निज धाम-अपने धाम में स्थित हो जाता है।

सारा संसार सामने दिखाई देता है और लगता है यह निकट है और यह मेरा है लेकिन यह न निकट है और न मेरा है। बचपन के मित्र बिछुड़ गये हैं। माता-पिता भी बिछुड़ गये हैं। आज उनकी याद होती है तब लगता है कि वे थे। अगर याद न हो तो कुछ नहीं लगता है। जहां-जहां हम गये और रहे वहां-वहां वे चीजें सत लगती थीं लेकिन वे अब खो गयीं। अपना बालपन खो गया, जवानी खो गयी, प्रौढ़ावस्था खो गयी, बुढ़ापा आ गया और यह भी एक दिन खो जायेगा। जीव के सामने कुछ ठहरता नहीं है। सब कुछ आता और जाता है। उसी में रीझता, खीझता और दुखी होता है। जवानी में रीझता है और बुढ़ापा में खीझता है। लेकिन जिसको विवेक ज्ञान हो जाता है उसकी दृष्टि एकरस हो जाती है। जवानी ही में जिसको विवेक ज्ञान हो जाता है वह बुजूर्ग हो जाता है और कोई बूढ़ा हो जाये लेकिन विवेकज्ञान न हो तो वह बच्चा ही बना रहता है इसलिए विवेक ज्ञान होना बहुत जरूरी है।

इनमें से कुछ लोग डाक्टर सम्पूर्णानन्द का नाम जानते होंगे। जवानी में उन्होंने लिखा था कि संतों ने इस संसार को बहुत दुखरूप कह डाला है। इतना कहने की जरूरत नहीं थी। लेकिन एक बार जब वे अस्वस्थ हुए तो काशी विद्यापीठ आये। वहीं उनका निवास हुआ करता था। लोग जब उनसे मिलने गये तब उन्होंने कहा कि मैं तो यहीं नरक भोग ले रहा हूं। अब देह नहीं धरूंगा। अब देह की जरूरत नहीं है।

वे उस समय राजस्थान के गवर्नर थे लेकिन गवर्नरशीप काम नहीं दे रहा था। शरीर उनका जर्जर और रोगग्रस्त था। सब कुछ उनको बीराना और रोग से भरा हुआ लगता था। तब उनको लगा कि संत जो कहते हैं, ठीक कहते हैं। तो भाई, यह अध्यात्म की बातें जल्दी समझ में आती कहां हैं। बहुत मुश्किल है अध्यात्म की बातों का समझ में आ जाना। इसीलिए गीता में कहा गया है "आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनम्" सबके लिए आश्चर्य कहा गया है। कोई बिरला ही इसको समझ पाता है।

उपनिषद् का एक कथानक बड़ा प्रेरक है। नचिकेता का पिता वाजश्रवस गोदान कर रहा था। वह बूढ़ी-बूढ़ी गायें गोशाला से मंगवाकर उनको दान करने लगा। नचिकेता कुमार था। वहां का जैसा वर्णन है उसके अनुसार लगता है कि वह बारह से पन्द्रह वर्ष के अन्दर का रहा होगा।

जब नचिकेता के पिता बूढ़ी-बूढ़ी गायों को दान करने लगे तो उसको बड़ा कष्ट हुआ। वह विचार करने लगा कि गोशाला में स्वस्थ गायें खूब हैं। पिताजी उनको मंगाकर दान नहीं कर रहे हैं और बूढ़ी-बूढ़ी गायों का दान कर रहे हैं जो गर्भवती होना तो दूर रहा, ठीक से घास भी नहीं चर सकती हैं। जिनको देंगे उनको इन गायों से क्या लाभ होगा। उसने सोचा कि मेरे ही लिए पिताजी अच्छी-अच्छी गायें इकट्ठी कर रहे हैं। इनको पुत्रैषणा है। पहले पुत्रैषणा होती है तब वित्तैषणा होती है। पिता जी सोच रहे हैं कि मेरे पुत्र है उसके लिए धन चाहिए। मेरे लिए ही ये अच्छी गायें रख रहे हैं, तो मेरे ही को क्यों नहीं दान कर दे रहे हैं।

उसने अपने पिता से कहा—पिताजी! आप मुझे किसको दे रहे हैं? पिता चुप रहा। नचिकेता ने फिर कहा—पिताजी! आप मुझे किसको दान कर रहे हैं? फिर उसके पिता चुप रहे लेकिन जब तीसरी बार कहा—"पिताजी! आप मुझे किसको दान कर रहे हैं?" तब उसके पिता ने कहा—जा, तुम्हें मैं यमराज को दे रहा हूं। वे नचिकेता पर क्रुद्ध हो गये।

नचिकेता ने कहा—"ठीक है, पिताजी, फसल उगती है, शस्यश्यामला होती है, बड़ी हरी-भरी दिखाई देती है, फिर पीली होकर गिर जाती है। प्राणी जन्म लेता है, बूढ़ा होता है और मर जाता है। इसलिए शोक नहीं करना चाहिए।" इतना कहकर वह चल दिया।

नचिकेता यमराज के यहां पहुंचा। यमराज उस समय घर पर उपस्थित नहीं थे। तीन दिनों के बाद वे आये। नचिकेता तीन दिनों तक बिना कुछ खाये-पीये उनकी प्रतीक्षा में उनके दरवाजे पर पड़ा रहा। उस बच्चे ने व्रत कर लिया था कि यमराज से जबतक समाधान न होगा तब तक मैं खाऊं-पीऊंगा नहीं।

यमराज आये तो नचिकेता से कहे—नचिकेता! तुम तीन दिनों तक मेरे द्वार पर बिना खाये-पीये मेरी प्रतीक्षा में बिताये हो। इसलिए मुझसे तुम तीन वर मांग लो। नचिकेता ने कहा कि महाराज, पहला वर तो मुझे यह दीजिए कि जब आप मुझे लौटायें और मैं अपने घर जाऊं तो पिता मुझे देखकर तनावग्रस्त न हों, सरल रहें। वे अपने कहे हुए कटु शब्द को भूल जायें और सुख से सोयें। दूसरी बात उसने हवन-तर्पण के विषय में पूछा। लेकिन उसका जो तीसरा प्रश्न था वह खास आत्मा के विषय में था।

नचिकेता ने पूछा-"येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये, अस्तीत्येके नायमस्तीति चैके"-महाराज, मर जाने के बाद मनुष्य के मन में यह विचिकित्सा (सन्देह) होती है कि आत्मा अमर है तो वह रहता है कि नहीं रहता है। जब कोई मर जाता है तब आदमी सोचता है कि जो आदमी मर गया है उसका अस्तित्व रहेगा कि खतम हो जायेगा। महाराज यही बताइये।

यमराज ने नचिकेता से कहा—"नचिकेता, और सब पूछो लेकिन यह न पूछो क्योंकि यह बड़ा गूढ़ विषय है। बड़े-बड़े देवता लोग भी इसको नहीं समझ पाये। तुम चाहो तो सौ वर्ष की जवानी ले लो। स्वर्ग का ऐश्वर्य ले लो। अप्सराओं जैसी स्त्रियां ले लो। ऐसे-ऐसे बाल-बच्चे ले लो जो सौ-सौ वर्ष जीएं। तुम गाजे-बाजे और स्वर्ग का सुख ले लो। मैं सब देने को तैयार हूं लेकिन आत्मा क्या है यह मत पूछो।"

नचिकेता ने यमराज से निवेदन पूर्वक कहा—महाराज! अभी जिन ऐश्वर्यों का वर्णन आपने किया है और जिनको मुझे देने को कहा है इनको आप अपने ही पास रखें। इन भोगों को आप देंगे तो भोगों से मेरी इन्द्रियां जीर्ण होंगी। कौन विवेकवान विषयों का चिंतन करते हुए जीना चाहेगा। महाराज, मैं तो आत्मा के विषय में आपसे पूछना चाहता हूं।

यमराज ने समझ लिया कि नचिकेता आत्मज्ञान का पात्र है। उन्होंने कहा—"नचिकेता! तुम उत्तम पात्र हो।

जिसके मन में विषयों से वैराग्य नहीं होगा वह आत्मज्ञान का अधिकारी नहीं है। जो विषयों से विरक्त होगा वही आत्मा के प्रति अनुरक्त होगा। जिन विषयों में लोग फंस जाते हैं उन विषयों को तूने तुच्छ समझकर त्याग कर दिया इसलिए तू उत्तम पात्र है। मैं तेरे को आत्मज्ञान का उपदेश करूंगा।'' फिर यमराज ने विस्तारपूर्वक आत्मज्ञान का उपदेश दिया है। यह कथा कठोपनिषद् में आती है। उसमें बहुत मार्मिक विचार आया है और उसी में कहा गया है—

यदा पंचावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम्॥

जब पांच ज्ञानेन्द्रिय, मन और बुद्धि शांत हो जाते हैं तब यही परम गति है। परमगति कुछ पाना नहीं है। इन्द्रियां शांत हो गयीं, मन शांत हो गया, बुद्धि शांत हो गयी, तब यही परम गति है। चंचलता दुख है। सारे भोग चंचलता से ग्रसित हैं। आज हैं कल नहीं हैं, ''श्वोभावा'' हैं। नचिकेता ने यमराज से कहा था—ये भोग तो श्वोभावा हैं। श्व-कल, अभावा-नहीं रहनेवाले हैं। ये कल नहीं रहनेवाले हैं और कल जो नहीं रहे वह 'श्वोभावा' है।

नचिकेता यमराज से कहता है कि जो कल न रहे उसमें मैं अपना मन क्यों फंसाऊं। जवानी आज है, कल नहीं रहेगी। जो सुख-संयोग माना है वह अभी है लेकिन अभी नहीं रहेगा। जो अभी है लेकिन कुछ क्षण बाद नहीं है उसमें क्यों मन फंसायें, यह बहुत बड़ी दीर्घदृष्टि है। यह दीर्घदृष्टि जल्दी नहीं आती है । जो कोई लगे और समझे तब समझते-समझते आती है। विषयासक्ति का ऐसा जबरदस्त परदा है जो इसको समझने नहीं देता। यही अविद्या है। अविद्या घोर अज्ञान है। माया-मोह का परदा है। वह मनुष्य के मन पर जमा है। विवेक के द्वारा यह जितना कटेगा उतना ही समझ में आयेगा।

मूल रूप में यह समझो कि मैं शुद्ध चेतन हूं। मैं देह नहीं हूं, मन मैं नहीं हूं और बुद्धिवृत्ति मैं नहीं हूं। जो संकल्पों का प्रवाह मेरे सामने आता-जाता है इसमें उलझ-उलझकर मैं दुखी होता हूं। ऐसा विवेक करके मन को शांत करो तब जगत शांत हो जायेगा। जैसे नदी के दो तटों को मिलानेवाला पुल होता है ऐसे आत्मा और जगत को मिलानेवाला मन होता है। पुल तोड़ दिया जाये तो दोनों तट अलग-अलग हो जाते हैं। जब लड़ाई होती है और दुश्मन हमला करते हैं तो कभी-कभी अपना ही पुल तोड़ दिया जाता है जिससे दुश्मन अपनी सीमा में न आ सकें। इसी प्रकार जो मनरूपी पुल को तोड़ देता है वह असंग हो जाता है।

अब मनरूपी पुल तो वैसे नहीं टूटता है। जीवनभर मन रहता है लेकिन मन निरस हो जाता है, अनासक्त हो जाता है और भूने बीजवत हो जाता है। जैसे कोई बीज है उसको भून दिये तो फिर उससे अंकुर नहीं निकलेगा। ऐसे ही मन रहता है लेकिन मन की आसक्ति मिट जाती है और साधक के मन में पूरी शांति आ जाती है। इसलिए जो जितना समझ पावे करे। जो ज्यादा समझते हैं वे ज्यादा लगें और जो कम समझते हैं वे भी लगें। जो आजतक इस विषय को सुने नहीं थे वे सुनें, सोचें और आरम्भ करें।

इस ध्यान सभा में कुछ नवयुवक-नवयुवतियां ऐसे भी हैं जो पहली बार आये हैं। उनको कई बातें विचित्र लगती होंगी। मेरा उनसे कहना है कि वे घबरायें नहीं। वे सुनें और समझें तब आगे और समझेंगे। अगर वे सुनेंगे नहीं तो उसके बीज आगे कैसे पड़ेंगे। इसलिए सुनो, समझो लेकिन यह पक्का समझ लो कि जो कुछ प्रतीत होता है वह तुम नहीं हो। तुम्हारे सामने जो कुछ आता है वह चला जाता है। अपना शरीर अपना नहीं है। ''अत्ता हि अत्तनो नत्थि कुतो पुत्तो कुतो धनम्'' तथागत बुद्ध ने कहा है कि जब अपना माना गया शरीर ही अपना नहीं है तब पुत्र अपना कहां है, धन अपना कहां है। यह तो बहुत मोटी दृष्टि से भी समझा जा सकता है लेकिन मोटी दृष्टि पर भी परदा पड़ा रहता है। माया-मोह तो बड़ा विकट है।

दूसरे लोग कहते हैं कि माया-मोह भगवान ने डाल दिया है। भगवान बेचारा कहीं होगा और अगर वह माया-मोह में होगा तो वह अपना ही दुखी होगा। हमारा माया-मोह हमारा बनाया है। हर व्यक्ति का माया-मोह

उसका अपना बनाया हुआ है, दूसरे का बनाया हुआ नहीं है। इसलिए अपने-अपने माया-मोह को देखो और समझो।

ब्रह्मवादी कहते हैं कि ब्रह्म की माया है। ईश्वरवादी कहते हैं कि ईश्वर की माया है। साफ नहीं होता है कि माया क्या है। साफ बात है कि माया है मन का मोह। लेकिन मन के मोह से हटकर माया की एक विचित्र कल्पना कर ली गई है। क्यों कर ली गई है क्योंकि जब प्रश्न होता है कि यह जगत किसने बनाया है तो लोग उत्तर देते हैं कि ईश्वर ने बनाया है। लेकिन फिर प्रश्न हो जाता है कि ईश्वर तो शुद्ध है तब जगत कैसे बनाया? तब क्या कहें, तब कह देते हैं कि माया से उसने बनाया। ऐसा ईश्वरवादी लोग कहते हैं।

बह्मवादी कहते हैं कि यह जगत माया से बना है। प्रश्न होता है कि ब्रह्म तो शुद्ध है फिर माया क्या है? ब्रह्मवादी कहते हैं कि माया को हम कह नहीं सकते हैं कि क्या है। अगर कहें कि ब्रह्म में माया है तो ब्रह्म ही दूषित हो जायेगा। अगर कहें कि ब्रह्म से अलग माया है तो द्वैत हो जायेगा। सत्ता दो हो जायेगी एक ब्रह्म और एक माया। तब ब्रह्म यह पसन्द नहीं करेगा कि कोई दूसरा हमारे सामने खड़ा हो जाये। इसलिए ब्रह्मवादी लोग कहते हैं कि माया अनिर्वचनीया है। कह नहीं सकते कि माया कैसी है लेकिन माया है और उसी का खेल यह संसार है।

ब्रह्मवादी यह भी कहते हैं कि माया बड़ी बलवती है। वह बलात चढ़ बैठती है। ईश्वर की माया और ब्रह्म की माया इसीलिए बलवती हो गयी क्योंकि वह दुनिया बनाती है। कबीर साहेब जिस माया को कहते हैं वह दुनिया नहीं बनाती है। दुनिया तो है ही। दुनिया को कौन बनाता है। आपने किसको कहां क्या बनाते देखा है। मकान बनाते हुए मनुष्य को देखा है, बिल बनाते चींटियों को देखा है और घोंसला बनाते पक्षियों को देखा है लेकिन पर्वत बनाते किसको देखा है। नदियों को बनाते किसको देखा है, समुद्र को बनाते किसको देखा है और चांद-सूरज को बनाते किसको देखा है। यह तो सब बनता-बिगड़ता रहता है। यह प्रकृति का खेल है और यह खेल अनादि-अनन्त है।

साहेब कहते हैं—"तहिया होते पवन नहिं पानी, तहिया सृष्टि कौन उत्पानी" जब पवन-पानी कुछ नहीं थे, तब सृष्टि किसने बना दी। कहने का तात्पर्य है कि यह सब कुछ सब समय था। जैसे आज है वैसे ही पहले भी था और वैसे ही आगे भी रहेगा।

लोगों से पूछा जाता है कि पहले बीज है कि वृक्ष तो बिना विचार किये ही फट से कह देते हैं कि बीज है। लेकिन जब पूछा जाता है कि बिना वृक्ष के बीज कैसे आ गया तब अपना उत्तर बदल देते हैं और कहते हैं कि "नहीं-नहीं, पहले वृक्ष है।" लेकिन फिर पूछा गया कि चलो भाई, तुम कहते हो कि पहले वृक्ष है तो बिना बीज के वह कहां से आ गया तब मौन हो जाते हैं और कहते हैं कि समझ में नहीं आता है कि पहले कौन है।

बिना वृक्ष के बीज नहीं है और बिना बीज के वृक्ष नहीं है। यह विश्व प्रपंच सब समय है। इसलिए साहेब इसमें नहीं उलझते हैं कि विश्व को माया ने बनाया। विश्व तो है ही। माया है मन का मोह और वह हर व्यक्ति का अपना-अपना बनाया है। हमारी माया के हम जिम्मेदार हैं और आपकी माया के आप जिम्मेदार हैं। माया हमारी रचना है। हम समझ जायें तो हम उस माया को खो दें।

एक लड़का और एक लड़की दोनों एक ही मुहल्ले में रहते हैं। वे आपस में एक दूसरे को देख भी लेते थे, एक दूसरे के सामने भी पड़ जाते थे और कभी बातचीत भी कर लेते थे लेकिन उनको एक दूसरे से कोई मतलब नहीं था। कुछ दिन के बाद दोनों की आंखें चार हुईं तो मोह हो गया। अब एक दूसरे को देखे बिना वे नहीं रह पाते हैं। उनमें परस्पर लगाव हो गया, मोह हो गया और बस माया शुरू हो गयी। अब यह माया किसने बनायी। यह माया क्या ईश्वर ने बनायी? ईश्वर ने नहीं बनायी बल्कि उस लड़के और उस लड़की ने बनायी।

मान लीजिए कि हम तम्बाकू के दुर्व्यसन से मुक्त थे। हमें एक ऐसा मित्र मिला जो तम्बाकू का व्यसनी था। उसने हमसे कहा—लो, तुम भी तम्बाकू खाओ।

हमने कहा कि नहीं भाई, मैं नहीं खाता। तब उसने कहा कि अरे यार! तुम भी क्या आदमी हो "बिना अमल का मर्द जैसे बाणा बर्द।" बिना अमल का मर्द अगर है तो जानो बाणा बर्द है, बैल है। इसप्रकार उसने हमसे कहा, हंसी-ठिठोली किया और जबरदस्ती एक बीड़ा तम्बाकू हमें दे दिया और हमने मुख में डाल लिया। वह कुछ चुरचुराया और कुछ खराब भी लगा। चुरचुराना हमें थोड़ा पसन्द भी आया।

दुबारा उस मित्र ने कहा यार और लो। तब फिर हमने खाया, फिर खाया और बस अब हमने पकड़ लिया तम्बाकू को तो यह माया क्या ईश्वर ने डाली? ईश्वर ने नहीं डाली। डालनेवाले तो हम खुद हैं। हां, एक मनुष्य उसमें निमित्त हुआ लेकिन हम न चाहते तो न लेते। इसलिए यह हमारी ही गलती है। जिस माया से हम पीड़ित हैं वह माया हमारी बनायी है।

माया माया सब कहैं, माया लखै न कोय।
जो मन से नहिं उतरै, माया कहिये सोय॥

जो मन से न उतरे वह माया है। कहीं मोह कर लो तो वह मन से उतरेगा नहीं, चढ़ा रहेगा। वैर कर लो तो वह भी चढ़ा रहेगा। जिससे वैर कर लोगे तो हरदम सोचते रहोगे कि उसका विनाश कैसे हो और जिससे मोह करोगे हरदम सोचते रहोगे कि उसको जायज-नाजायज सम्पन्न कैसे बनायें। जो हरदम दिमाग पर चढ़ा रहे वही माया है। अब अगर दिमाग पर ज्ञान चढ़ जाये तो यह निर्माया हो गया। अपने आप हो गया और यह अलग दशा है।

ईश्वर ने माया डाल दी इसका बड़ा हल्ला है। यह हल्ला सामान्य जनता में ही नहीं किंतु ज्ञानी लोगों में भी है। ज्ञानी लोग भी कहते हैं और यहां तक कि प्रामाणिक किताबों में भी लिखा है।

ब्रह्मवादियों की माया बड़ी विकट है। वह अघटित घटना पटीयसी है, दुरत्यया है और अनिर्वचनीया है। ईश्वरवादियों की माया है "प्रभुमाया गरीयसी।" जब जिसको वह चाहे भटका दे। मानस में गोस्वामी जी ने लिखा है कि माया में कितने लोग भटकते चले गये हैं। राम की माया सबको नचा रही है। "सबहिं नचावत राम गोंसाईं" राम गोसाईं सबको नचा रहे हैं। अब जो नचाये तो उससे दूर ही भागना पड़ेगा। बदहवासी में अपने इष्ट को भी ऐसा कह दिया जाता है और यह भी पता नहीं रहता है कि हम क्या कह रहे हैं क्योंकि दृष्टि ही जब साफ नहीं रहती है तब उल्टा-पल्टा सब कह दिया जाता है। "सबहिं नचावत राम गोसाईं" यह बिलकुल गलत है। सब स्वयं अपने-अपने अज्ञान से नाच रहे हैं। राम गोसाईं किसी को नहीं नचा रहे हैं।

श्रीराम किसी को नचाने क्यों आयेंगे। वे जब थे तब थे अब कहां है जो किसी को नचावें। अब मान लो कि श्रीराम परब्रह्म के रूप में हैं और कहीं बैठे हैं तो वे नचायेंगे क्यों। जब वे शुद्ध-बुद्ध हैं, उपासनीय हैं और पवित्र हैं तब किसी को क्यों नचायेंगे। आपके गांव में एक आदमी ऐसा हो जो गांवभर को परेशान करता हो, सबको नचा रहा हो उसको क्या कोई पसन्द करेगा।

लोग आते हैं तो कहते हैं कि "क्या करूं महाराज! ईश्वर की माया परेशान किये है।" इसका मतलब है कि ईश्वर कोई बहुत गड़बड़ आदमी है। लेकिन यह कितनी भूलभुलैया की बात है और जिनको प्रामाणिक शास्त्र कहते हैं उसमें यह भूलभुलैया की बात लिखी है। यह वेदान्त के ग्रंथ में है, ईश्वरवाद के ग्रंथ में है और बड़े-बड़े धार्मिक कहलानेवालों के ग्रंथ में है। अच्छे-अच्छे पंडित और महात्मा कहते हैं, आम जनता तो बिचारी कहती ही है "जेहि मारग गये पंडिता तेई गई बहीर"। साहेब कहते हैं कि जिस मार्ग से पंडित जाते हैं उसी मार्ग से "बहीर" भीड़ भी जाती है। साहेब का मन्तव्य है कि यह सब कुछ नहीं है। वे कहते हैं—

मन माया तो एक है, माया मनहि समाय।
तीन लोक संशय परी, मैं काहि कहूं समुझाय॥

मन और माया तो एक है। जो मन का विकार है वही माया है। मन से अलग माया नहीं है लेकिन तीन लोक को तो यही संशय पड़ा हुआ है कि माया कहीं आकाश में है और जबरदस्ती वह मनुष्य के ऊपर कूद पड़ती है या ईश्वर कुदा देता है लेकिन यह झूठ है।

कोई ईश्वर हमारे ऊपर माया चलाता नहीं है। कोई शैतान या भगवान हमें परेशान करनेवाला नहीं है।

हमारी दुर्बुद्धि ही हमें परेशान करती है। हमारा अज्ञान ही हमें परेशान करता है। मोह ही माया है। एक युग्म शब्द में लोग कहते हैं—मोह-माया। माया-मोह कहो या मोह-माया कहो बात एक ही है। मोह ही माया है। "कहहिं कबीर ते ऊबरे जाहि न मोह समाय" यह छोटा-सा वाक्य है। साहेब कहते हैं वही माया से उबर सकता है जिसके मन में मोह नहीं है।

प्रश्न आता है कि मोह अगर छोड़ दिया जाये तब व्यवहार कैसे किया जायेगा। ये माताएं मोहवश ही तो बच्चों को पालती हैं। इसका उत्तर है कि मोह न रहने पर भी अच्छा व्यवहार होगा। इसको समझने के लिए धाय मां का उदाहरण बहुत सटीक रहता है। माताओं को ही नहीं बल्कि हम सब लोगों को भी धाय की तरह रहना चाहिए।

धनियों के घर में बच्चों को पालने के लिए नौकरानियां रहती हैं। वे बच्चे को पालती हैं, प्यार करती हैं, दूध पिलाती हैं, पुचकारती हैं, सबकुछ करती हैं लेकिन वे बच्चे से मोह नहीं करती हैं क्योंकि वे समझती हैं कि बच्चा मेरा नहीं है। उसको अपना नहीं मानती हैं। वैसे ही हमलोगों को रहना चाहिए। हम लोग भी मोह करेंगे तो गिरफ्त में हो जायेंगे। जितनी मात्रा में हम मोह करेंगे उतनी ही मात्रा में हमारा मन चंचल होगा। ज्यादा मोह करेंगे तो मन ज्यादा चंचल होगा। कम मोह करेंगे तो मन कम चंचल होगा। और कम करेंगे तो और कम चंचल होगा। अगर मन मोहशून्य हो जायेगा तो चंचलता बिलकुल खत्म हो जायेगी। यह बात गणित की तरह है।

कबीर साहेब के विचार धर्म के क्षेत्र में गणित की तरह है और ऐसे गणित-जैसे विचार उपनिषदों में, शास्त्रों में, बुद्धवचन में और महावीर वचन में भी हैं। उनमें से इन वचनों को छांटना भी पड़ता है क्योंकि अंधविश्वास भी उनमें है। जैसे योगदर्शन उसमें बहुत बढ़िया विचार है लेकिन एक अध्याय ही उसमें विभूतिपाद के नाम से है जिसमें चमत्कार की बात, अलौकिक सिद्धियों की कल्पना है। योगदर्शन पर भाष्य करते समय उसका मैंने तीव्रता से खण्डन किया है।

अभी उत्तरकाशी का एक युवक साधु आकर मेरे आश्रम में रहा। वह योगदर्शन के मेरे भाष्य को पढ़कर मस्त था। उत्तरकाशी में एक सांख्ययोगी संत से वह योगशास्त्र पढ़ रहा था। उसने कहा कि साहेब, मैंने योगदर्शन के छः भाष्य पढ़े हैं लेकिन किसी में इतना साफ नहीं है जितना साफ आपके भाष्य में है। इसमें तो पूरा खुलासा है।

कुछ लोगों को चमत्कारपूर्ण बातों पर संदेह तो होता है फिर भी सत्य कहने की हिम्मत उनमें नहीं होती है। वे सोचते हैं कि शास्त्र में लिखा है और आर्ष पुरुष ने लिखा है फिर यह झूठ कैसे होगा। यह बड़ा भ्रम है लेकिन आप ध्यान दें—किसी बात को इसलिए न मानें कि वह पुराने ग्रंथ में लिखी है और इसलिए भी न मानें कि किसी बड़े महापुरुष ने कहा है। इसलिए भी न मानें कि ज्यादा जनता इसको मानती है किंतु उसको देखें कि वह है क्या।

अयोध्या की एक घटना है। मैं हनुमान गढ़ी के पास एक जगह था। एक संत ने मुझसे कहा कि क्या आप रामायण नहीं मानते हैं। मैंने कहा कि मैं रामायण मानता हूं लेकिन रामायण की बात आप कहिये कि कौन-सी बात मानना है और कौन-सी बात नहीं मानना है तब विचार करूं। तब वे हंसने लगे क्योंकि उसकी कमजोरी वे खुद भी जानते थे।

मास दिवस का दिवस भा, मरम न जाने कोय।
रथ समेत रवि थाक्यो, निशा कवन बिधि होय॥

मानस में गोस्वामी जी ने यह लिखा है। जब श्रीराम का जन्म हुआ था तो अयोध्या में राम जन्मोत्सव हो रहा था। उसको देखने के लिए सूरज एक महीना रुका रहा। "मास दिवस का दिवस भा" एक माह का दिवस हो गया। "मरम न जाने कोय" इस मर्म को कोई नहीं जाना। वाल्मीकि जी भी इस मर्म को नहीं लिखे क्योंकि वे भी इस मर्म को नहीं जान पाये लेकिन गोस्वामी जी, जो सोलहवीं शताब्दी में हुए, इस मर्म को जान गये और लिख दिये।

मैं कह रहा था कि शास्त्रों में बहुत भूलभुलैया है और बहुत हीरे-मोती भी हैं। मैंने वेदों एवं उपनिषदों

पर, योगदर्शन एवं रामायण पर काम किया है। उसमें मैंने नीर-क्षीर विवेक किया है और निर्भय होकर किया है, कुछ डरा नहीं है।

एक संत जो इलाहाबाद के ही हैं लेकिन अमेरिका में ज्यादा रहते हैं। वे मेरी पुस्तकें पढ़े तो मुझसे मिलने आये और कहे थे कि ऐसा नीर-क्षीर अलग-अलग लिखते क्या आपको डर नहीं लगता है। मैंने उनसे कहा कि क्या दो बार मरना है। एक ही बार मरना है तब डर किसका तो वे हंसने लगे। बात यह है कि मैंने जैसा समझा वैसा लिखा और उसका आदर पंडितों ने किया और आज भी कर रहे हैं। सभी मतों के लोग कर रहे हैं और महसूस कर रहे हैं कि यह सच कह रहे हैं। ऊपर से भले ही वे अपनी बातें भक्तों पर थोपें लेकिन अन्दर से समझते हैं कि ये सच कह रहे हैं।

कबीर साहेब उस समय निर्भय थे जब मुसलमानों का जलवा था। भारत में शासन तुर्कों का था और धार्मिक शासन पंडितों का था। काशी में और भारत में सर्वत्र ब्राह्मणवाद अपने उत्कर्ष पर था। उस समय काशी में कबीर साहेब नहीं डरे और ज्यों का त्यों बेलाग होकर वे अपनी बात कहे। अगर सत्य कहने में डरा जायेगा तो सत्य नहीं कह मिलेगा।

बात आयी थी कि माया क्या है। माया आपके मन के मोह के अलावा कुछ भी नहीं है। आपकी माया आपकी बनायी है और मेरी माया मेरी बनायी है। सबकी अपनी-अपनी अलग-अलग बनायी माया है। विवेकज्ञान उदय होगा तब यह माया कटेगी। इसके लिए जरूरी है कि जिन्होंने अपनी माया काटी है ऐसे गुरुओं और संतों की संगति करो और ऐसे ग्रंथों का मनन करो जिसमें इसका निर्णय है।

संतों और ग्रंथों का आधार लेकर रोज अभ्यास करो। अभ्यास करते-करते यह माया कटेगी और जितनी कटेगी उतना और साफ समझ में आयेगा। माया जितनी कटती जायेगी ज्ञान का प्रकाश उतना फैलता जायेगा और शांति मिलती जायेगी।

मूल रूप में आप समझें कि आप शुद्ध चेतन हैं, अमर आत्मा हैं। यह आत्मा नश्वर नहीं है। शरीर नश्वर है। आत्मा अमर है। बचपन की बात हम याद करते हैं, जानते हैं। विज्ञान मानता है कि शरीर के सारे कण सात वर्ष में बदल जाते हैं। अगर कोई इक्कीस वर्ष का है तो इसका मतलब है कि तीन बार उसके सारे कण बदल चुके होंगे लेकिन वह पन्द्रह वर्षों के पहले की कुछ बातों को याद करता है। एक अस्सी वर्ष का व्यक्ति है और वह सत्तर-पचहत्तर वर्ष पूर्व की बात को याद करता है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि जो स्मृतियों का धारक, स्मरणों का धारक आत्मा है वह अमर है, नित्य है।

जगत का सम्बन्ध मन और इन्द्रियों के द्वारा है। हमारा शरीर छुट जाये तो यह जगत हमारे लिए खो जायेगा। शरीर में रहकर मैं सबको देख रहा हूं, जान-समझ रहा हूं और सबको देख-जानकर मैं रीझ रहा हूं, खीझ रहा हूं। यह रीझ और खीझ मिट जाना आत्मस्थिति है लेकिन यह भी तत्काल समझ में नहीं आता है। लड्डू खाने में आनन्द आता है, काम-भोग में आनन्द आता है, ममता-मोह करने में आनन्द आता है, लड़ाई-झगड़ा करने में आनन्द आता है, यह सब में आनन्द आता है।

जो जितना भोगों में उलझेगा उतना ही सन्निपात में ग्रस्त होगा। और वह उतना ही बदहवास होगा और यह समझ नहीं पायेगा कि हम क्या कर रहे हैं। इसलिए आत्मा और अनात्मा का विवेक करो। मन के द्वारा प्रतीतमान जो कुछ भी है उससे आप अलग हैं। इसप्रकार की दृष्टि रखकर अपनी तरफ लौटो।

मन से जगत प्रतीत होता है और मन शांत हो जाने पर जगत से आत्मा बिलकुल विमुक्त हो जाती है। इस बात को बुद्धि से समझो, अध्ययन से समझो और ध्यान में इसका साक्षात्कार करो। जब ध्यान बन जायेगा तब ध्यान में इसका साक्षात्कार होगा। जब ध्यान का नया अभ्यास रहता है तब समझ में नहीं आता है इसलिए कोई घबराओ न। करते-करते होगा। करते चलो-करते चलो। इसी शुभकामना के साथ मैं अपनी वाणी को विराम देता हूं। ❑

वही चीज़ें ज़रूरी हैं, जिनसे खुशी का अनुभव हो

पश्चिमी दार्शनिक विचारक एपिकुरुस के विचार

किसी व्यक्ति को कभी मृत्यु की चिंता नहीं सतानी चाहिए, क्योंकि मृत्यु से मुलाकात मुश्किल है। जब हम जीवित हैं तो मृत्यु नहीं आएगी और जब मृत्यु आएगी तो हम जीवित नहीं रहेंगे।

अगर भगवान हर तरह की प्रार्थनाओं को सुनने लगे, तो दुनिया खत्म हो जाएगी। कोई मनुष्य जीवित नहीं रहेगा क्योंकि हर इंसान ने कभी न कभी दूसरे व्यक्ति के खत्म होने की दुआ मांगी होगी।

किसी बेवकूफ व्यक्ति को बहुत सारी दौलत-शोहरत मिलने से बेहतर होगा कि किसी समझदार व्यक्ति को कुछ भी न मिले।

आप अकेले पूरी आजादी के साथ जीवन व्यतीत कर रहे हैं तो आपके पास पैसा होना मुश्किल है, क्योंकि पैसे और जमीन की देखरेख के लिए लोगों का साथ होना बहुत जरूरी है।

दोस्ती कभी मदद नहीं करती है, लेकिन बुरे वक्त में दोस्तों का आत्मविश्वास ही गंभीर परिस्थितियों से बाहर निकलने में मददगार साबित होता है।

जो व्यक्ति बहुत ज्यादा को बहुत कम समझता है, दरअसल उसके लिए बहुत ज्यादा कुछ होता ही नहीं है।

खूबसूरती के साथ जीना और खूबसूरत मृत्यु मिलना, दोनों एक ही बात हैं।

हमारे पास कितनी चीज़ें हैं, इसका कोई मतलब नहीं है, लेकिन हमें किन चीज़ों से खुशी का अनुभव होता है यही सबसे जरूरी है।

जिस वक्त आप ज्यादा लोगों से घिरे होते हैं, उसी वक्त खुद के साथ समय गुज़ारने का मन होता है।

अपनी जिंदगी उन चीज़ों के पीछे भागते हुए न बिताएं जो आपके पास हैं ही नहीं, क्योंकि जो चीजें आपके पास हैं, वे पहले आपकी नहीं थीं।

कभी-भी ज्यादा लोगों को खुश रखने की कोशिश न करें, क्योंकि जिन चीजों के बारे में आप जानते हैं, उन्हें वे नहीं मानेंगे और जिन चीज़ों में वे लोग विश्वास रखते होंगे, उसे आप पसंद नहीं करेंगे।

बिना किसी डर-खौफ से जीवित रहना अच्छा है, क्योंकि सोने के बने बिस्तर या चांदी के चम्मच से खाने का क्या मतलब जब पूरा जीवन मुश्किलों और उलझनों से घिरा हो।

किसी व्यक्ति को अमीर बनाने का एक ही तरीका हो सकता है। उसे पैसे देने की बजाय उसकी अपेक्षाओं को छीना जाए।

जो चीजें मनुष्य खुद हासिल कर सकता है उन चीज़ों के लिए भगवान से प्रार्थना करना व्यर्थ होता है।

जो व्यक्ति नियम-कानून का पालन नहीं करता है, उसके जीवन में मुश्किलों का कोई अंत नहीं होता है।

जिस व्यक्ति को छोटी चीज़ों से खुशी नहीं मिलती है, उसे कभी किसी चीज़ से खुशी नहीं मिल सकती है।

किसका अहं करूं

रचयिता—साध्वी संतुष्टि

किसका अहं करूं मैं कुछ भी न साथ होगा।
जिस तन को अपना माना, वह भी न साथ होगा।
मिट्टी का ये खिलौना, मिट्टी में जा मिलेगा॥
जिन रिश्तों को अपना कहता, वह भी न साथ होगा।
श्मशान में मिलाकर मुँह अपना मोड़ लेगा॥
जिस धन को अपना जाना, वह भी न साथ होगा।
मरने के बाद सब कुछ यहीं पड़ा रहेगा॥
करो नेक कर्म अपना जो साथ में चलेगा।
सन्तुष्टि तेरे मन में गुरु ज्ञान तब खिलेगा॥